पाइय-कहाओ

प्राकृत कथाएँ

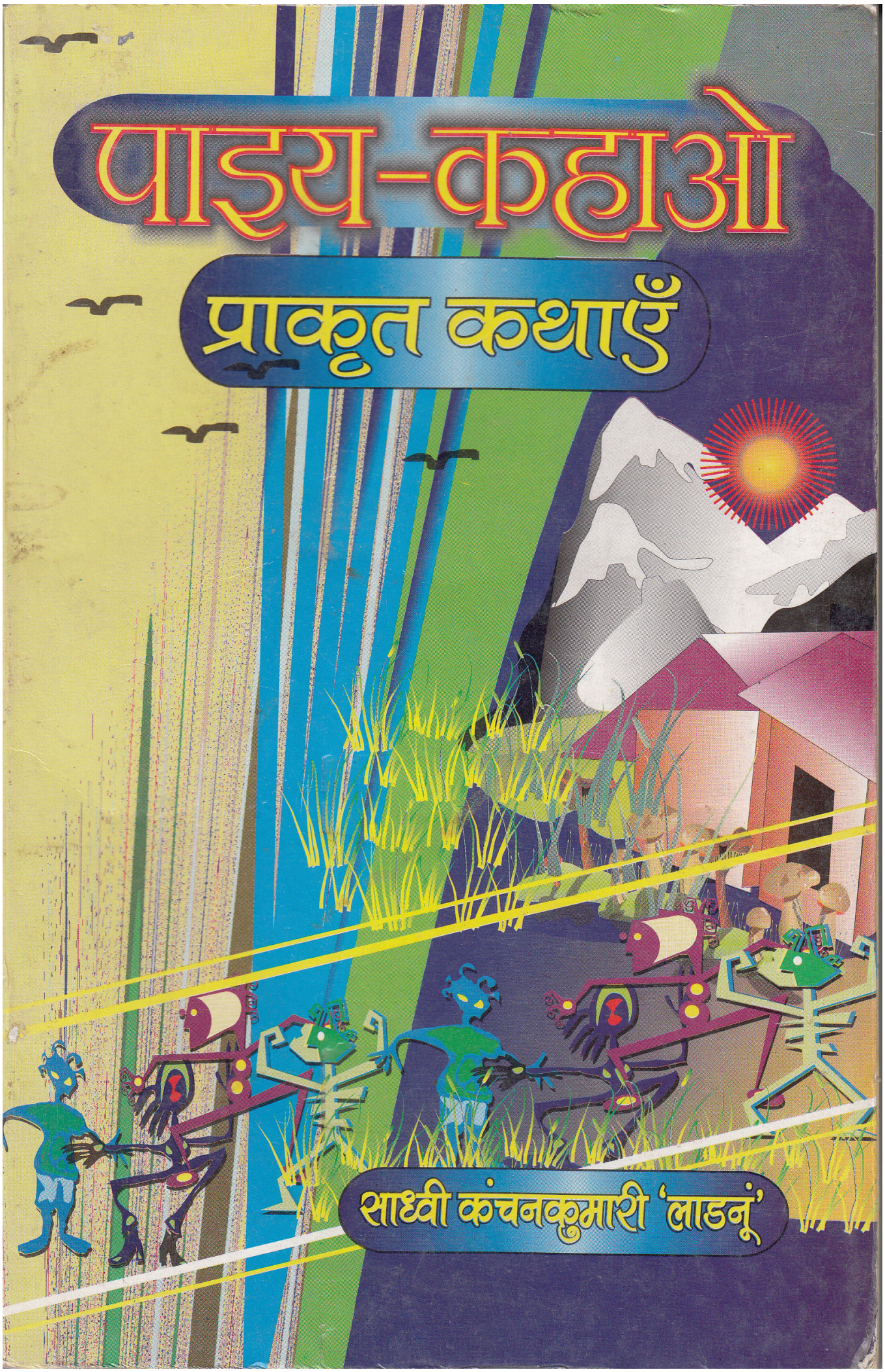

साध्वी कंचनकुमारी 'लाडनूं'

पाइय-कहाओ
(प्राकृत कथाएँ)

साध्वी कंचनकुमारी 'लाडनूं'

सम्पादक

डॉ. हरिशंकर पाण्डेय

9वीं यू.जी.सी. राष्ट्रीय शोध पुरस्कार से सम्मानित

अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनागम विभाग

जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं (राज.)

जैन विश्व भारती

लाडनूं (राज.)

प्रकाशक :

जैन विश्व भारती

लाडनूं-341306 (राज.)

© जैन विश्व भारती

सम्पादक : डॉ. हरिशंकर पाण्डेय

आर्थिक सौजन्य :

श्रीमती मोहनीदेवी *W/o* स्व. श्री सागरमलजी चौरड़िया

सुरपत चेरीटीज, 'सागर', नं.-160,, सेकेण्ड मेन

फोर्थ क्रौस, फस्ट ब्लॉक, आर.एम.वी., सेकेण्ड स्टेज

बैंगलोर-560964

प्रथम संस्करण : फरवरी, 2005

मूल्य : 75/- रुपये मात्र

मुद्रक : कला भारती

नवीन शाहदरा, नई दिल्ली-32

पाइअ-कहाओ—एक स्तुत्य प्रयास

चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर की एक अपूर्व विशेषता यह भी थी कि उन्होंने अपना उपदेश प्राकृत भाषा में—लोकभाषा में दिया था। भगवान् महावीर मगध के निवासी थे, अतः उन्होंने मगध की उस समय प्रचलित प्राकृत भाषा में अपना उपदेश दिया था। उसी भाषा में उनके गणधरों ने भगवान् का उपदेश द्वादशांगी रूप में सूत्रबद्ध किया था। भगवान् के उपदेश में तत्त्वज्ञान, आचार, विश्वस्वरूप की विचारणा आदि के साथ-साथ एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा कथाओं का रहा है। भगवान् सामान्य मनुष्यों को अनेक दृष्टांत, लघुकथाएं एवं चरित्रकथाओं द्वारा जीवन और जीवनधर्म का मर्म बताते थे। षष्ठ अंग नायाधम्मकहाओ (ज्ञाताधर्मकथा) में हम यह देख सकते हैं। यही परंपरा जैन उपदेशकों द्वारा सैकड़ों वर्ष तक अक्षुण्ण चालू रही और हमें प्राकृत भाषा में हजारों छोटी-बड़ी उपदेशकथाएं मिलती रहीं।

जहां-जहां जैन धर्म का प्रसार-प्रचार हुआ वहां-वहां साधुओं ने उस-उस प्रदेश की लोकभाषा को अपने उपदेश का माध्यम बनाया। इस तरह प्रदेशभेद से और कालभेद से लोकभाषा प्राकृत के विविध भेद—मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, पैशाची और अंतिम भेद अपभ्रंश में विशाल साहित्य का निर्माण हुआ। मध्यवर्ती प्राकृत महाराष्ट्री में प्राप्त तरंगवती, वसुदेवहिंडी, समरादित्यकथा, कुवलयमालाकथा आदि ग्रंथों का जैन साहित्य में ही नहीं अपितु समग्र भारतीय कथासाहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भगवान् महावीर के समय से पंद्रह सौ वर्ष तक प्राकृत भाषा विविध स्वरूप में लोकभाषा बनी रही। लगभग दसवीं शताब्दी से आधुनिक भारतीय भाषाओं का उद्‌गम एवं विकास होने लगा। धार्मिक साहित्य की भी इन उत्तरकालीन विविध भारतीय भाषाओं में रचना होने लगी, प्राकृत में रचना प्रवृत्ति मंद हो गयी। किन्तु जैन मुनियों ने आज तक श्रद्धापूर्वक प्राकृत भाषा का अध्ययन, अध्यापन और क्वचित प्राकृत भाषा में रचना करने का सिलसिला चालू रखा है। ऐसा ही एक प्रयत्न है साध्वी श्री कंचनकुमारी 'लाडनूं' की 'पाइअ-कहाओ'।

'पाइअ-कहाओ' में साध्वी श्री विरचित 121 छोटी-बड़ी प्राकृत कथाएं हिन्दी अनुवाद के साथ संग्रहीत हैं। इन कथाओं की दो विशेषताएं हैं—एक तो यह कि ये रचनाएं अनायास की गई प्रतीत होती हैं और दूसरी ये कथाएं अत्यंत सरल, रसिक एवं बोधदायक हैं। इन कथाओं में तेरापंथ के इतिहास में घटी हुई घटनाओं के साथ-साथ प्राचीन प्रचलित लोककथात्मक घटनाओं को भी प्राकृत में ढाला गया है। सरल हिन्दी अनुवाद के साथ संगृहीत ये कथाएं प्राकृत भाषा के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगी।

परम पूज्य आचार्यवर्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व में सुविकसित तेरापंथ के साधु-साध्वीगण में ज्ञानार्जन की तीव्र पिपासा रही है। साध्वी श्री कंचनकुमारीजी का प्राकृत भाषा में ग्रंथरचना का प्रयत्न उसी ज्ञानमय वातावरण का द्योतक है।

—रमणीक शाह
(पूर्व अधयक्ष, प्राकृत-पालि विभाग,
गुजरात यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद)

स्वकथ्य

जीवन का उद्देश्य है–आनन्द की खोज। आनन्द प्राप्ति की विविध विधायें हैं। उन विधाओं में एक विधा है–साहित्य-सृजन। साहित्य का आधार है–सत्यं-शिवं और सुन्दरम्। साहित्य के माध्यम से अमूर्त्त और अस्पष्ट भावों को मूर्त्त एवं स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। साहित्य मात्र दर्पण नहीं, वह पथदर्शक भी है। साहित्य के नाना रूपों में एक सर्वग्राही रूप-कथा है। कथा की बुनावट में सुख-दु:ख, आकर्षण और विकर्षण का ताना बना होता है। जैन साहित्य में नीति, उपदेश, वैराग्य, वीरता, मैत्री, साहस, सरलता आदि अनेक विषयों पर प्राकृत व संस्कृत भाषा में हजारों कहानियां लिखी गयी है। कहानी लोकप्रिय, मनोरंजक होने के साथ-साथ ज्ञानवर्धक और बुद्धि का विकास करने वाली है। कहानी एक ऐसी विधा है जिससे कठिन-से-कठिन बात सरलता से समझी जा सकती है। वह बाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, प्रबुद्ध-अबुद्ध, राजा तथा प्रजा सबको आकृष्ट करती हैं।

प्रस्तुत कथा-संग्रह में लिखी गयी कहानियों में से अधिकांश कहानियां जैन तेरापंथ के इतिहास से जुड़ी हुई हैं। कुछ लोकोपयोगी कथाओं का संचयन भी इसमें हुआ है। इन कथाओं की भाषा प्राकृत है। मैंने जब अध्ययन के क्षेत्र में प्रवेश किया और प्राकृत भाषा से मेरा परिचय हुआ, मेरे मन में एक ललक उठी कि मैं भी इस भाषा पर अधिकार कर इसमें कुछ-न-कुछ अवश्य लिखूं। गणाधिपति तुलसी की दक्षिण भारत की यात्रा के समय मुझे गुरु कुलवास का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय साध्वी श्री कनकप्रभाजी (वर्तमान में महाश्रमणी साध्वी प्रमुखा श्री जी) ने कई साध्वियों को प्राकृत व्याकरण 'तुलसी मञ्जरी' का आद्योपान्त पारायण करवाया। उसी समय से मैं कुछ लिखने का अभ्यास करने लगी। मुझे जहां भी कठिनाई होती वहां आप समाधान करती। गुरुकुलवास की एक अवधि सम्पन्न कर मैं पुन: साध्वी श्री सिरेकुमारी जी 'सरदारशहर' के पास आ गयी। उनके मातृतुल्य वात्सल्य ने मुझे शिक्षित और संस्कारी बनाने में बड़ी भूमिका निभाई है। साध्वी कमलश्री जी के सहयोग को भी मैं विस्मृत नहीं कर सकती, समय-समय पर उनका योगदान मिलता रहा। इसके अतिरिक्त जिनका इस कृति के निर्माण में प्रत्यक्ष-परोक्ष सहयोग रहा, इन सबकी स्मृति करते हुए मुझे अहोभाव की अनुभूति हो रही है।

मैं एक बार श्रद्धेय आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी के अपपान में बैठी हुई थी। प्रसंगवश पूज्यवर ने पूछा–क्या कर रही हो? मैंने कहा–प्राकृत में कुछ लिखने का अभ्यास करती हूं। प्रेरणा के स्वर में आगे पूज्यवर ने फरमाया–छोटी-छोटी कहानियां लिखो। मैंने प्रेरणा को शिरोधार्य कर कार्य प्रारम्भ किया और 117 कहानियों का यह संग्रह तैयार हुआ। इस नवीन संस्करण में 121 कहानियां हैं।

जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय के प्राकृत विभाग के अध्यक्ष डॉ. हरिशंकर पांडेयजी ने प्रस्तुत कृति का प्रथम संस्करण का कुशल सम्पादन का कार्य स्वयं ने ही किया। अब दूसरे संस्करण का सम्पादन भी इनके हाथों से ही हो रहा है। प्रथम संस्करण के दुरूह कार्य को बड़े ही मनोयोग से स्वल्प समय में ही परिसम्पन्न किया। पांडेय जी प्राकृत भाषा के तलस्पर्शी ज्ञाता हैं।

मैं पूज्य गुरुदेव गणाधिपति तुलसी, श्रद्धेय आचार्य श्री महाप्रज्ञजी, युवाचार्य श्री महाश्रमणजी एवं महाश्रमणीजी से यही मंगल आशीर्वाद चाहती हूं कि पूज्यवरों का पथदर्शन सदा मेरे पथ का आलोक बना रहे। प्राकृत भाषा के नवसिखियों के लिए यह पुस्तक अभ्यास की रेखायें खींच सकी तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूंगी।

साध्वी कंचनकुमारी 'लाडनूं'

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृ. संख्या
1.	सीस-परिक्खा	2
2.	कया धम्म समायरणं?	4
3.	अवसरस्स मोल्ल	6
4.	वक्क-कला	8
5.	समत्तं	10
6.	रसेसु ण गिद्धे	12
7.	विचित्तं संवाय	14
8.	वेरग्ग-पिरक्खा	16
9.	तवे सूरा अणगारा	18
10.	दउ्ढधम्मि-सावगो	20
11.	अणुसासिओ ण कुप्पेज्जा	22
12.	असाहारण पडिभा	24
13.	विणयस्स उक्किठं उआहरणं	26
14.	विवेगे धम्ममाहिए	28
15.	पिठी मंसं न खाएज्जा	30
16.	पमत्तो किं ण कुणेइ	32
17.	दाणस्स पभाव	34
18.	माणुस्सत्तं खु दुल्लहं	36
19.	अत्ताणं ण समुक्कसे	38
20.	कसेह अप्पाणं	40
21.	णणेण विणा ण हुंति चरणगुणा	42
22.	धम्मो एव सरणं	44
23.	अप्पं अप्पणा जाणह	46
24.	धम्मे-धुए-णिइए-सासए	48
25.	सो किं करेइ	50
26.	लोहो सव्व विणासणो	52
27.	गुणागुणरूवं णामकरणं	54
28.	अप्पमत्तस्स णत्थि भय	56
29.	तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं	58
30.	समया धम्ममुदाहरे मुणी	60
31.	उवसमेण हणे कोहं	62
32.	एगं जिणेज्ज अप्पापाणं एस से परमो जओ	64
33.	समप्पणं	66
34.	संकप्प-सत्ती	68
35.	णिरासा साहणाए विग्घो	70
36.	सुठिअप्पा बालमुणी	72
37.	कयग्घणया पावं	74
38.	दड्ढसंकप्पो	76
39.	विणये ठवेज्ज अप्पाणं	78
40.	रायणीइए चत्तारि-सुत्ताणि	80
41.	धी-परिक्खा	82
42.	तवो कम्मं निज्जरेइ	84
43.	वियार संपेसणं	86
44.	अबीया खमा	88
45.	धुव-जोगं	90
46.	णो पमाइए	92
47.	देहेदुक्खं महाफलं	94
48.	माहमंतस्स महत्तं	96
49.	सपुरिसाणं संकप्पो	98
50.	दुस्संगं चएज्जा	100
51.	खणं जाणाहि पंडिए	102

52. सव्वं सुचिण्णं स्फलं 104
53. को मेहावीद्य 106
54. समयाए पडिमुत्ती 108
55. विसज्जणं 110
56. हवइ बीयाणुरूवं फलं 102
57. कं णाणं सोहइ? 114
58. अप्पेण मा बहु विलुंपह 116
59. अपत्थं आसेवणस्स फलं 118
60. सद्धापरम-दुल्लहा 120
61. पोग्गलाणं भंगुरआ 122
62. पण्णा समिक्खए 124
63. दिट्ठिभेओ 126
64. अत्तहियं खु दुहेण लहइ 128
65. साहल्लस्स रहस्सं 130
66. एगत्तं सुहहेउ 132
67. णियसासणं पुणो अणुसासणं 134
68. को कुणइ कीवस्स संरक्खणं? 136
69. को अमरो? 138
70. पत्तेयं पुण्णपाव 00
71. जोव्वणो ण पच्चावलइं 00
72. सहावाणुसरेण पस्संति लोगा 00
73. चएज्ज देहं ण उ धम्म-सासणं 00
74. अप्पाणं-सरणं 00
75. सच्चम्मि धिइं कुव्वह 00
76. का ओसही उत्तमा? 00
77. को पंडिओ? 00
78. परिवट्टणं वत्थुसहावं 00
79. खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे 00
80. चक्कवट्टिस्स भोयणं 00
81. जागरउ मण मंदिरं 00
82. खंति सेविज्ज पंडिए 00
83. जीवणस्स सारं णाणं 120
84. इच्छा हु आगाससमा अणंतिया 00
85. वेयणा विमुत्ती 123
86. पच्चुप्पन्नमई 00
87. किरियं च रोयइ धीरो 00
88. अलं बालस्स संगेण 00
89. जारिसी दिट्ठी तारिसी सिट्ठी 00
90. इड्ढीए परिच्चायं 00
91. आणा गुरुणं अवियारणिज्जा 00
92. विहारचरिया इसिणं पसत्था 00
93. विवत्ति अविणीयस्स संपत्ति विणीयस्स य 00
94. सत्तीए चमक्कारो 00
95. अप्पसुद्धिसाहणं धम्मो 00
96. सव्वं ण होइ 00
97. पमाओ परमो सत्तु 00
98. सच्चमेव सरणं 00
99. धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ 00
100. को चेयणं आवरेइ! 00
101. को णिमज्जइ? 00
102. किमुक्किट्ठं जणणीजणयाइरित्तं 00
103. धम्मं विणाा णिप्फलं मणुयजम्मो 00
104. सच्चमेव जअइ 00
105. बुद्धीअ सिज्झंति कज्जाणि 00
106. कुम्म व्व अलीण पलीण गुत्तो 00
107. सम्मचित्तं होयव्वं 00
108. सहाव परिवट्टणं कुणह 00
109. का सिक्खा मुक्खपुरिसाणं 00

110. मा पुणो चुकिज्जइ 00
111. कहं भविस्सइ अत्तसोही? 00
112. दिढधम्मिणी साविगा 00
113. कोहो-चंडालो 00
114. सामाइयस्स महत्तं 00
115. वेयावच्चं 00
116. जे कम्मसूरा ते धम्मसूरा 00
117. अप्पा दन्तो सुही होइ 00
118. कायगुत्तीए-मुत्ती 00
119. सोयारा-तिण्हि-पयारा 00
120. चउरा पण्हा 00
121. ण मुञ्चणिज्जं मणुयसहावं 00

70. पत्तेय पुण्णपावं

अहेसि णयरम्मि तिण्णि मित्ताणि करेंति परोप्पपरं अप्प गुणाणं वक्खाणं। साहिअं पढमेण भूवइसुत्तेण–भो मित्तवर! जिवेमि अहं पुण्णवलेण? भणिअं बीअ अमच्चपुत्तेण–सहयर! अहं विज्जावलेण।

बोल्लइ तइओ वणिओ अंगजाओ–अत्थि अहं वाणिज्ज कुसलो। णिअ दइवपरिक्खा हेऊ गमिआ तिण्हि जणा सुदूरपएसम्मि। णयरुज्जाणम्मि चिट्ठंति। तस्स णयरस्स णरणाहो अकम्हा कालं पत्तो। सज्जाविओ महामंत्तिणो एगो आसो। सो आसो चरमाणो आगओ जत्थ चिट्ठइ रायकुमारो। तक्खणं आसेण सयमेव साहरिसो रक्खिओ कुमारो णियखंधोवरिं। णयरजणा रोमंचीअ। जय-जय सद्देण गूंजिओ आयासो।

बीय दिवसे वाणिज्जकुसलो पुरिसो पविट्ठो पुरम्मि। एगो वावारिओ थेरो आवणम्मि ठिओ। सो वणिअपुत्तो तस्स समीवमागओ। तद्दिवसे अत्थि तहेव मंगलोस्सवो। आगच्छंति आवणम्मि अणेग-पुरिसा वत्थुक्कअणट्ठं।

सो वुड्ढो पुडिअं बंधेउं असमत्थो। समयण्णु वणियपुत्तो थेरस्स सहअरो होऊण विक्किणेउमाढत्तो पुडिया। घय-गुड-सुट्ठि-मिरिअ-लवणाइयाणं पुडिअं बंधिऊण सव्वाणं देहं लग्गो। आवणसामी लद्धो अचिंतिअं लाहं। संतुट्ठो सो सेट्ठी वणिज्जपुत्तं अणेग वत्थालंकारेण सम्माणिओ सक्कारिओ य, पुणरवि वि उवणिमंतिओ य।

तइओ धीमंतो पहाणअत्तओ भममाणो आगओ कम्हि णयरीए मज्झे, तहेव बहवे लोगा परुप्परं साहेंति–अज्ज णयरीए अपुव्वं घडीअ। सो पहाणसुत्तो वि पवेसिओ ववहारम्मि। पेक्खइ एगं विचित्तं घडणाचक्कं। दुवे महिलाओ नरिंदसमीपमागया। तया णरिदो पुच्छइ–किमेत्थ आगमणपओयणं? ता साहेंति–नरणाह! विवायं निण्णयत्थं आगमिआ तुम्हाणमंतिआ।

राया जम्पइ–अत्थि जं तुम्हाणं विवाओ तं साहअं। एगा भणेइ–अत्थि इमो वालो मे अत्तओ। बीइआ वि एवं चिय कहेइ। तद्देसणत्थं समागआ बहवे लोगा। राया वियारइ एत्थ किं परमत्थओ सच्चं किं असच्चं? तं च कहं जाणिज्जइ। राया णिण्णेउमसमत्थो जाओ।

मंतिपुत्तो कहेइ–नरिदं! होउ जइ तुब्भाण अणुमइ ता मए एयाणं विवाअं कसवट्टिए कसिज्जइ, तेण सच्चमसच्चं वि जाणिज्जइ। राया भणेइ–कोवि उवाएण एयाणं विवायं भंजिऊण एगं मायरं परमाणं कुणं।

70. प्रत्येक का पुण्य-पाप अलग-अलग है

एक नगरी में तीन मित्र परस्पर अपने-अपने गुणों की प्रशंसा कर रहे थे। पहले राजा का लड़का बोला–मित्र! मैं अपने पुण्य बल पर जीता हूं। दूसरा मंत्रीपुत्र कहने लगा–मैं अपनी विद्वता पर जीता हूं।

तीसरे वणिक् पुत्र ने कहा–मैं व्यापार में कुशल हूं। अपने-अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिए तीनों दूर प्रदेश गये। नगर के उद्यान में ठहरे। उस नगर का राजा अकस्मात् काल को प्राप्त हो गया। महामंत्री ने एक घोड़ा सजाया। वह घोड़ा चलता हुआ उद्यान में पहुंचा, जहां राजकुमार बैठा था। हंसते हुए घोड़े ने राजकुमार को अपने कंधें पर बैठा लिया। जनता रोमांचित हो गयी। राजकुमार की जय-जयकार से आकाश गूंज उठा।

दूसरे दिन व्यापार कुशल वणिक् पुत्र ने नगर में प्रवेश किया। व्यापारी बाजार में बैठा था। वह वणिक् पुत्र भी उसके पास चला गया। उस दिन वहां मंगलमहोत्सव था। अनेक पुरुष वस्तु खरीदने के लिए आ रहे थे।

वह वृद्ध पुरुष पुड़िया बांधने में असमर्थ था। समयज्ञ वणिक् पुत्र सेठ का सहयोगी बनकर पुड़िया बेचने लगा। घी, गुड़, सौंठ, मिर्च, नमक आदि पुड़िया बांधकर सबको देने लगा। दुकान के स्वामी को अचिंत्य लाभ की प्राप्ति हुई। संतुष्ट होकर दुकानदार वणिक् पुत्र को अनेक वस्त्र अलंकार से सम्मानित किया और फिर आने के लिए निमन्त्रण दिया।

तीसरा बुद्धिमान् प्रधान-पुत्र भ्रमण करता हुआ किसी नगर में आ गया। अनेक लोग परस्पर कह रहे थे आज नगर में अपूर्व घटना घट गयी है। प्रधान-पुत्र भी न्यायालय में पहुंचा। वहां उसने एक विचित्र घटना चक्र देखा। दो महिलाएं राजा के पास आई। राजा ने पूछा–यहां आने का क्या प्रयोजन? वे दोनों बोली–हे नरनाथ! आपके पास निर्णय के लिए आई हूं। राजा ने कहा–जो विवाद हो, उसे कहो। एक स्त्री ने कहा–यह बालक मेरा आत्मज है। दूसरी औरत ने भी इसी प्रकार बतलाया। उस दृश्य को देखने के लिए बहुत सारे लोग एकत्रित हो गए। राजा ने सोचा–परमार्थतः क्या सत्य है, क्या असत्य है, यह कैसे जाना जाए। राजा निर्णय करने में असमर्थ हो गया।

तया मतिअंगओ ता दोण्णि महिलाओ बोल्लाविऊणाहइ–भणसु जहत्थं अन्नहा करिस्सामि अहुणाच्चिय डिंभस्स खंड-खंडं। देमि तुब्भं अद्धं अद्धं। एवं दुहदं वुत्तंतं सुणित्ता एगा-महिला गग्गअसरेण भणेइ-मंतिप्पवर! मा कुण एयं अवराहं, जइ जीवेइ पुत्तो तया कहमवि मुहकमलं विलोएमि, अओ करसु पुत्तस्स सुरक्खा। बीआ इत्थी साहेइ–जं करिस्सं तं च्चिअं अहं मन्नेमि। तत्थेव ठिओ णिवो सव्वं निरूवेइ, अप्पेइ पुत्तं पढमं इत्थिं।

तस्स बुद्धिए संतुट्ठेण निवेण सो पारियोसिओ अणेग दव्ववत्थुहिं।

मंत्री पुत्र ने कहा–नरेन्द्र। यदि तुम्हारी अनुमति हो तो इस विवाद को मैं कसौटी पर कसूं, जिससे असत्य-सत्य का निर्णय हो जाएगा। राजा ने कहा–कोई भी उपाय से इस विवाद को भंजन कर एक मां को प्रमाणित करो।

मंत्रीपुत्र ने दोनों महिलाओं को बुलाकर कहा–यथार्थ घटना बतलाओ अन्यथा इस बच्चे का खंड-खंड कर दूंगा और तुम लोगों को आधा-आधा दे दूंगा। इस प्रकार दु:खद बात को सुनकर एक महिला गद्‌गद् स्वर से बोली–मंत्री प्रवर! ऐसा अपराध मत करो। अगर बेटा जिन्दा रहेगा तो कैसे भी मुंह कमल देख पाऊंगी, इसलिए पुत्र को सुरक्षापूर्वक रखो। दूसरी स्त्री बोली–जो भी तुम करोगे वही मुझे मंजूर है। वहां बैठा राजा सब कुछ देख रहा था। प्रथम स्त्री को सच्ची मां समझकर राजा ने अपने हाथों से पुत्र को उसे दे दिया। मंत्री पुत्र की कुशाग्र बुद्धि से संतुष्ट होकर राजा ने उसे अनेक वस्तुओं को पारितोषिक रूप में दिया।

71. जोव्वणो ण पच्चावलइ

परिणयवया अवणयंगीं य थेरी वच्चइ मग्गम्मि। दट्ठुण तं ईसिहसमाणेण पुच्छिआ जुवगेण–मायर! अहे किं ढुंढिल्लसि? किं वत्थु पाससि? गंभीर सरेण थेरीए पडुत्तरिअं–सुअ! नट्ठं मे तरुण्णभूयं मोत्तिअं, तं अण्णेसामि। अत्थि अगम्मो अमुल्लिरो गुज्झो, हत्थेहिं णिक्कसिओ य। अमुल्लो जोव्वणो ण पुणो पच्चावलइ?

वइक्कंतो जुव्वणस्स लावण्णं ण पुणरवि आवट्टइ। वच्छ! कुणसु सुरक्खं इंमस्स मोत्तिअस्स। मा होव मुहा संब्भमो। पेक्खियव्वं सययं जीवणं। खणमेत्तमवि पमायं मा करियव्वं।

71. यौवन फिर नहीं लौटता

परिणत अवस्था और झुके हुए अंगों वाली एक वृद्धा मार्ग में चली जा रही थी। मुस्कुराता हुआ एक युवक बोला–माता! नीचे क्या ढूंढ़ रही हो? क्या वस्तु देख रही हो? गंभीर स्वर से वृद्धा बोली–बेटा मेरा तारुण्यरूपी मोती खो गया। उसकी गवेषणा कर रही हूं। वह अगम्य है, अमूल्य है, गुप्त है–हाथों से निकल गया। वह अमूल्य यौवन पुनः नहीं मिल सकता।

अतीत का यौवन-सौन्दर्य पुनः प्राप्त नहीं होता है। वत्स! इस मोती की सुरक्षा करो। वृथा संभ्रमित न होवो। अपने जीवन को देखना चाहिए। क्षणमात्र भी प्रमाद मत करो।

72. सहावाणुसारेण पस्संति लोगा

पच्चूसे रायमग्गम्मि सयइ एगो पुरिसो। अणेगे भममाणा पुरिसा तं पुरिसं पासंति। तेसु एगेण पुरिसेण असिणेह-वज्जकक्कसाए गिराए वज्जरियं। एस पुरिसो मज्जपाणेण उम्मत्तो हुविअ पडिओ। चेअणावि खलिआ जाआ। ण ओलक्खिज्जइ मुहागिई।

दीहणीसासमुंच्चंतेण बीयपुरिसेण पज्जरिअं–इमो पुरिसो मुओ अमुणिओ य सयण-बंधु-जणेहिं।

तइओ भणेइ–एसो पहिओ, गममाणो थक्किओ, संतो, परितंतो य वीसमणट्ठं सोयइ।

सगरिहं भासाए चउत्थो पुरिसो भणइ–एसो पुरिसो तक्करो अत्थि। रयणीए पम्हुसइ अहुणा मुच्छिअ पडिओ।

वज्जरइ पंचमो पुरिसो–अत्थि अप्पलीणो जोईसरो। करेइ अज्झत्त बीसामं। अणेगविहा चिंतणस्स, एग-वत्थूवरिं भिण्णा-भिण्णा कप्पणा। जे जारिसा सन्ति ते तारिसा वियारेंति। णियसहावाणुसरेण पासंति जणा सव्वजगजीवाजीवदव्वाइं।

72. स्वभाव के अनुसार ही लोग देखते हैं

प्रात:काल राजमार्ग में एक पुरुष सो रहा था। आते-आते अनेक पुरुषों ने उसे देखा। उनमें से एक पुरुष अस्नेह कर्कश वाणी में बोला–यह पुरुष मद्य पीकर उन्मत्त होकर गिर पड़ा है। चेतना शून्य हो गया है। इसकी मुंह की आकृति भी पहचानी नहीं जाती। दूसरा पुरुष दीर्घ-नि:श्वास छोड़ता हुआ बोला यह पुरुष मर गया है। इसके स्वजन बंधुओं को मालूम नहीं है।

तीसरे ने कहा यह कोई एक पथिक है। चलता हुआ थक गया। संतप्त परितप्त हुआ विश्राम के लिए सो रहा है।

चौथे ने सगर्हित भाषा में कहा–यह पुरुष तस्कर है। रात्रि में चोरी करता है, इस समय मूर्च्छित होकर पड़ा हुआ है।

पांचवें पुरुष ने कहा–यह तो आत्मा में लीन योगी है, अध्यात्म-विश्राम कर रहा है (योग-निद्रा में सो रहा है)।

चिन्तन की विधा अनेक होती है, पर वस्तु के ऊपर भिन्न-भिन्न कल्पनाएं हैं। जो जैसे होते हैं वैसे ही विचार करते हैं। निज स्वभाव के अनुसार ही लोग सम्पूर्ण विश्व के जीव अजीव द्रव्य को देखते हैं।

73. चएज्ज देहं ण उ धम्म-सासणं

एगासिअं मज्झसव्वरीए विचिंतिअं नरनाहेण-जियसत्तु रज्जम्मि अत्थि एआरिसी का वत्थु जेण कयावि कस्स वि पयारेण तं असहलं करणं असंभवं। अन्नेसणं काउं पउत्तो। गुज्झ-रूवेण मुणिअं णराहिवेण अंतरं विभेओ। अहेसि तस्स रज्जम्मि एगो महत्तपुण्णो तुरंगो, तस्स पहावो अतुल्लो। रक्खिओ सो आसो सुरक्खाहेऊ समदिट्ठ-सावग-जिणदत्तस्स हम्मम्मि। पडिदिणं गच्छइ सेा जिणदत्तेण सह मुणि-दंसणट्ठं।

हिणेण तुच्छेण णिवेण पेसिओ कवडकुडिलो बंकयारो एगो पुरिसो जियसत्तु समीवं। सो करेइ जिनदत्तसावगेण सद्धिं मित्तत्तणं। परोप्परं परिवड्ढइ पेम्मभावणा, महुर-ववहारेण हवंति एगमेगं, परं ण मुणिआ जिणदत्तेण तस्स तिरोहिअ-कवड रेहा।

वीसास-पत्तं जाणिऊण एगासिअं साहिअं-बंधुप्पवर! गच्छामि अहं कज्जवसेण अण्णठाणे कुणसु सुरक्खं तुरंगस्स। सीगरिअं कुडिलो मित्तस्स कहणं। पच्चूसे मुणिवंदणट्ठं गओ वंकयारो पुरिसो तुरंगेण सद्धिं। पच्चावलिअं तं घरस्स अग्गओ चलाविओ परं तुरओ एगमवि पयं अग्गओ ण सरइ। तया तो तं ताडइ, पीट्टइ, कुट्टइ य। दिड्ढपइण्णो वाहो परओ चलणं ण सीगारेइ। पाणं परिचत्ता वि धम्मं णीसंकं णिव्वाहइ। आसो आवइकालम्मि गहिअव्वयस्स सम्मं रूवेण परिपालेइ।

एआरिसदिड्ढपइण्णाणं कस्स वि तुलाए तुलणं असक्कं। मिच्छादिट्ठीव्यूहे परिबंधणे वि सो ण खलइ जस्स लक्खं पइ दिट्ठी। गज्जइ ताणं गारवगाहा दिसाचक्कवालम्मि।

73. शरीर को छोड़ दो, धर्म शासन को न छोड़ो

एक बार मध्य-रात्रि में राजा ने चिन्तन किया—जित शत्रु राजा के राज्य में ऐसी क्या वस्तु है, जिसके कारण किसी भी प्रकार से उसे असफल नहीं किया जा सकता। अन्वेषण करने में प्रवृत्त हुआ। गुप्त रूप से राजा अन्दर के भेद को जान गया। उसके राज्य में एक महत्त्वपूर्ण घोड़ा है। उसका प्रभाव अतुल्य है। वह घोड़ा सुरक्षा हेतु सम्यग् दृष्टि श्रावक जिनदत्त के घर रखा हुआ है। वह प्रतिदिन जिनदत्त के साथ मुनि-दर्शन के लिए जाता है। हीन और तुच्छ राजा ने जितशत्रु के पास एक कपट-कुटिल और वक्र पुरुष को भेजा। उसने जिन-दत्त श्रावक के साथ मित्रता कर ली। प्रेम भावना बढ़ी। मधुर व्यवहार में दोनों एक रस हो गए। पर जिनदत्त उसकी छिपी हुई कपट रेखा को नहीं पहचान पाया।

विश्वास-पात्र जानकर जिनदत्त ने कहा भाई! मैं कार्य-वश कहीं अन्य स्थान जा रहा हूं। इस घोड़े की सुरक्षा करना। कुटिल मित्र के कथन को स्वीकार कर लिया। प्रातःकाल मुनि वंदन के लिए वक्र पुरुष घोड़े के साथ गया। दर्शन कर वापिस आते समय घोड़े को घर से आगे चलाया। पर घोड़ा एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा। तब उसने घोड़े को खूब पीटा और मारा। दृढ़ प्रतिज्ञ घोड़ा आगे चलने के लिए स्वीकार नहीं किया। घोड़े ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया पर धर्म को नहीं छोड़ा। आपत्ति काल में भी घोड़े ने गृहीत धर्म की सम्यक् प्रति पालना की। ऐसे दृढ़ प्रतिज्ञ को किसी भी तुलना पर तोला नहीं जा सकता। वह मिथ्या दृष्टि के चक्रव्यूह में पड़कर भी अपने लक्ष्य के प्रति जागरूक रहने वाला स्खलित नहीं होता। उसकी गौरवगाथा चारों दिशाओं में गूंजती है।

74. अप्पाणं सरणं

विहरमाणे गुरु महिरूहस्स हेट्ठं झायइ झाणं। गुरूवकंठे ठिओ सीसो। इओ आगमिओ पंचाणणो। भयभिओ सीसो पायवोवरिं उवगच्छइ। तक्खणं वोल्लावीअ गुरुं। एहि गुरुदेव! एहि उवरिं। भवसमीवं आगमिओ सीहो। भक्खिस्सइ तुमं। झाणम्मि संलीणो गुरु तुण्हिको जाओ। समीवं आगओ केसरी परं झाणं ण खुडीअ। गुरुं जिग्घित्ता अग्गओ सरिओ सीहो। पच्चोरूहइ सीसो। विहरंति एए। मगगम्मि गुरुं दंसइ तिक्खअर भसलो। पीलाए उप्पीडिएण गुरुवरेण साहिअं वेअणा उप्पज्जइ।

सीसो–गुरुवर! अच्छेरं बहु अच्छेरं। अहं ण जाणामि भेअं। जया आगओ सीहो, तया झाणम्मि संलग्गो, संपइ भसलदंसणेण कहं तिव्व वेअणा फुडिआ। इमस्स किं रहस्सं?

सीस! अविण्णायो तुमं। जया आगओ केसरी मज्झ समीवे तया अहेसि अहं अप्पाणं सरणम्मि, अहुणा सीसेण सद्धिं।

74. आत्मा की शरण

मार्ग में चलते-चलते गुरु एक विशाल वृक्ष के नीचे ध्यान के लिए बैठ गए। गुरु के पास शिष्य भी बैठ गया। इधर से एक पंचानन आया। भयभीत होकर शिष्य वृक्ष पर चढ़ गया। गुरु को भी बुलाया है। हे गुरुदेव! ऊपर आ जाओ। आपके पास सिंह आ रहा है, और यह आपको खा जाएगा। ऊपर आ जाएं। ध्यान में तल्लीन गुरु मौन थे। केसरी सिंह गुरु के पास आ गया। फिर भी गुरु का ध्यान नहीं टूटा। सिंह गुरु को सूंघकर आगे चला गया।

शिष्य नीचे उतरा। दोनों ने विहार किया। मार्ग में गुरु को तीक्ष्ण मच्छर ने काट लिया। मच्छर की पीड़ा से गुरु ने कहा तीव्र वेदना हो रही हो।

शिष्य–गुरुदेव! बहुत आश्चर्य होता है। मैं इस भेद को नहीं जान पाया। जब आपके पास सिंह आया। तब आप ध्यान में संलग्न थे और अभी एक मच्छर से काटने से इतनी वेदना व्यक्त कर रहे हैं। इसका क्या मतलब?

शिष्य? इसका रहस्य तू समझ नहीं सका। जब मेरे पास केसरी सिंह आया था तब मैं आत्मा की शरण में था। और मच्छर ने काटा तब मैं तुम्हारे साथ हूं।

75. सच्चम्मि धिइं कुणह

भिक्खू-किसण! तुह सहावो बहुउग्गो, अओ मे अप्पणा सद्धिं ण रक्खिस्सं। तुमं कहं गमणं? कि कायव्वं? वियारेज्ज।

किसणो—जइ तुमं अप्पणा सह ण रक्खेज्ज तया अप्पणं पुत्तं पि नेस्सामि त्ति कहिऊण सो अरुणिभूओ।

भिक्खू—तुमं को रुंधेज्ज? तव संपया तवग्गे चिट्ठइ।

किसणो—उट्ठ वच्छ! कहिं अण्णट्ठाणे गच्छामो वयं। मं बुड्ढो करेइ दूरं, वयं किं ण करेमो! एवं जम्पमाणो सो किसणो सिग्घं णियपुत्तस्स करं गहित्ता अन्नत्थ ठाणे गओ।

पुत्तो—ताय! अत्थि अहं कयपुण्णो। लब्भइ अम्हे चिंतामणीरयणेण तुल्लो भिक्खुसामी। मम दव्वाओ तह भावओ वि खेमं हवइ। अओ पुज्जवरचलणेसु सययं वसणं ज्जेव मे वांच्छा।

जाणेमि अहं कयावि पयारेणं तत्थ ण रक्खिस्सइ।

पुत्तो—जइ तुमं एवं कहेसि, ता अहं करिस्सं सच्चग्गहं। ममाहारो आयरिप्पवर-हत्थेहिं होहिइ, अण्णहा जावज्जीवं अणसणं करेमि। एव्वं कया पडिण्णा साहस-पुव्वयेण भारीमालेण।

किसणो—वच्छ! जाव उयरो भत्तपुरियो ताव पेरंतं अणसणं। जया बुभुक्खापिवासेहिं पीडिओ ता हवेज्ज आउल-वाउलो। थोवं कालं पच्छा किसण मुणी गोयरियाए महुर-सणेह-सुरभिय-भव्वं उत्तमं भोयणं घेत्तूण समागओ।

एहि-एहि पुत्त! एहि अप्पण पिअ-पुत्तो दोण्हि सद्धिं भक्खेमो आहारं। पुत्तो तुण्हिको ठिओ। पुणरवि कहेइ आगच्छ पुत्त! सत्तरमागच्छ! पुणो-पुणो कहेइ। रोसेण कहेइ पुणरवि तुमं सुणेसि अहवा णो। महुर-सरेण पुणरवि भणेइ—मुंच-मुंच अण्णग्गहं। अणसणं मुंचित्ता सिग्घमागच्छ। करेमो वयं एक्कमेकं आहारं। तया वि ण दिण्णं पच्चुत्तरं।

एवं अइक्कंता तिण्हि बासराइं, ण भोयण-गहियं, ण च पिअं णीरं। कया जणयो विविहा उवाया परन्तु ण लहइ सहलत्तणं।

किसणो चिंतेइ—कहमवि मम कहणं पुत्तेण ण सीगारियं। अहुणा किं वांच्छसि त्ति णायव्वं।

75. सत्य में धृति रखो

भिक्षु स्वामी—किसनो जी! तुम्हारा स्वभाव बहुत उग्र है। इसलिए तुझे मैं अपने साथ नहीं रखूंगा। तुम्हें कहां जाना है, क्या करना है, विचार कर लो।

किसनोजी—स्वामी जी! यदि तुम अपने साथ नहीं रखोगे तो मैं अपने पुत्र को भी साथ ले जाऊंगा। ऐसा कहकर क्रोध से लाल हो गए। भिक्षु—तुझे कौन रोकता है। तुम्हारी सम्पत्ति तुम्हारे पास है।

किसनोजी—उठ बेटे! कहीं अन्यत्र स्थान पर हम लोग चलें। मुझे बूढ़ा छोड़ रहा है। हम दोनों पिता-पुत्र कुछ नहीं कर सकते? ऐसे बोलते हुए किसनो जी बेटे का हाथ पकड़कर कहीं अन्य स्थान पर ले गए।

पुत्र—पिताजी हम कृतपुण्य हैं, हमें चिन्तामणि रत्न तुल्य भिक्षु स्वामी मिले हैं। हमको द्रव्य और भाव दोनों तरफ से फायदा है। अतः सतत पूज्य गुरुदेव के चरणों में निवास करने की ही मेरी इच्छा है।

पिता—पुत्र! मैं जानता हूं किसी भी शर्त पर वे हमें नहीं रखेंगे।

पुत्र—पिताजी! यदि आप ऐसा कहते हैं तो मैं सत्याग्रह करूंगा। मेरा आहार पूज्यवर के हाथों से ही होगा। अन्यथा मैं जीवन भर के लिए अनशन ग्रहण करता हूं। इस प्रकार साहस पूर्वक बाल-मुनि भारीमाल जी ने प्रतिज्ञा कर ली।

पिता—पुत्र! जब तक तेरा पेट भरा पड़ा है तब तक ही अनशन है, जब भूख-प्यास लगेगी तब आकुल-व्याकुल हो जाएगा। थोड़ी देर बाद किसनोजी गोचरी में मधुर सरस भिक्षा लेकर आये। पुत्र को आवाज लगाई। पुत्र! आओ-आओ! हम दोनों मिलकर आहार करेंगे। पुत्र मौन रहा। पुनरपि आवाज दी। आओ भारीमाल शीघ्र आओ (यों) बार-बार बुलाया। पर पुत्र नहीं उठा। (किशनोजी) रोष में होकर बोले—तू सुन रहा या नहीं। फिर मधुर स्वर में बोले—बेटे आग्रह को छोड़कर शीघ्र आ जाओ। हम दोनों साथ मिलकर आहार करेंगे। फिर भी उत्तर नहीं दिया।

इस प्रकार अनशन के तीन दिन बीत गये। न भोजन किया न ही पानी पिया।

पिता ने विविध उपाय किए पर किसनो जी पुत्र को समझाने में सफलता प्राप्त न कर सके। अन्त में पुत्र की प्रतिज्ञा को देख मलिन मुख

फुडिअं उत्तं तेण जं तुह कहणं ण सीगारिस्सं।

पिआ–जइ तव इहा एवं च्चिय ता पयल भिक्खुसामिसमीवे। सामिं दंसणट्ठं उक्कंट्ठिओ भारीमालो सत्तरं उट्ठिओ। तक्कालो दोण्हि गमिआ गुरुवरस्स सन्निहीए। उल्लसियमणो सीसो सविणय-सभत्तिं णमंसित्ता वंदइ।

किसणो भणइ–भंते! भारीमालो तुम्हाणमेव झाणइ, थुवइ, अच्चइ, अहिवंदइ, समरेइ य। कयं मे परिक्खणं परं किंचि वि ण विअलिओ। इमो तुम्हाण एव जोग्गं, तुम्हाणमेव सीसो। सीगारेह मे पत्थणा। सविणयं णिवेएमि–णिअसमीवे ज्जेव भारीमालं रक्खउ।

सामी–सुणेह किसण! किंच वि णत्थि ममग्गहं। पुणरवि परिक्खणं करेह णिअपुत्तस्स।

किसणो–भंते! समग्गपयारेण करीअ परिक्खणं। भयवम्मि ज्जेव तल्लीणो वट्टइ।

समुज्जलभालो भारीमालो आयरियप्पवराणं पायारविंदेसु आगच्छइ। अट्ठमस्स पारणं कारेइ गुरुवरो णिअहत्थेण। भारीमालमुणी सव्वप्पयारेण गुरुवरं पइ समपिओ आसि सद्धाविणअ-भत्ति-भावेण करेइ सामिणं आराहणं।

किसनो जी ने चिन्ता किया–मेरा कथन इसने किसी भी तरह स्वीकार नहीं किया। अब पुत्र क्या चाहता है। इसकी जानकारी करनी चाहिए।–उसने स्पष्ट कह दिया कि आपका कथन स्वीकार नहीं करूंगा।

पिता–यदि तेरी इच्छा ऐसी है तो भिक्षु स्वामी के पास चलें। स्वामी जी के दर्शन का उत्कंठित शिष्य भारीमाल शीघ्र उठ गया। तत्काल दोनों गुरुदेव की सन्निधि में उपस्थित हुए। उल्लसित मन शिष्य गुरुदेव को सविनय सभक्ति प्रणाम करके वंदना की। किसनोजी ने कहा–भगवन्? भारीमाल आपका ही ध्यान करता है। स्तुति करता है, अर्चना करता है। अभिवादन करता है। आपको ही प्रतिक्षण स्मरण करता है। मैंने परीक्षा की है पर किंचित् भी विचलित नहीं हुआ। यह आपके ही योग्य है और आपका ही शिष्य है। मेरी प्रार्थना स्वीकार कर भारीमाल को अपने पास ही रखें। आचार्य भिक्षु–किसनो जी? सुनो इसमें मेरा जरा भी आग्रह नहीं है। फिर परीक्षा कर लो अपने बेटे की।

किसनो जी–भन्ते समग्र प्रकार से मैंने परीक्षा कर ली है। यह आपमें ही लीन है।

उज्ज्वल भाल श्री भारीमाल आचार्य प्रवर के चरणों में आ गये। तेले की तपस्या का पारणा आचार्य भिक्षु के हाथों से किया। भारीमाल जी स्वामी आचार्य भिक्षु के प्रति सर्वात्मना समर्पित थे। श्रद्धा भक्ति से स्वामी जी की आराधना करते थे।

76. का ओसही उत्तमा?

एगया महारायहरम्मि कुलभाणू समुप्पन्नो।अणेग समुद्दीअ- सुलक्खण-संपण्णपुत्तं णिभालिऊण णरणाहो विचिंतइ–मे अंगजाओ ण सिया कयावि रोयक्कंतो, कायव्वा एयारिसी ववत्था। अदिस्सं भविस्सं गवेसंतो णरणाहो निमंतीअ अणेग चिकिच्छगाणं। तेसु वेज्जवरेसु नरनाहेण दिण्णं आएसं तिण्हं वेज्जाणं। वेज्जवरा! वण्णणं करह सवित्थरं चिकिच्छासत्थस्स। पढमेण वेज्जवरेण भणिअं–नरेंद! ममोसहीए पुव्वरोयं अवस्सं फिट्टिस्सइ। जइ णत्थि पुव्ववाही ता सो हवइ अहिओ लुग्गो।

बीओ अणुभवी चिकिच्छगो बोल्लइ–णराहिव! मे चिगिच्छप्पओगेण निच्छिअमेव णिरामओ जाओ रायकुमारो। जइ ण हवइ रोयं ता ण हवइ लाहं ण हाणी य।

तइओ कुसलो चिगिच्छगो सगव्वेण कहइ–नराहिव! निसामेह ममोसहीए वक्खाणं। मे ओसही सोमरसेण भाविआ। होहिस्सइ अक्खलिया पडिकिरिया। भविस्सइ रायकुमारस्स देहो कणगसारिसो सुन्देरो। सिग्घं आरुग्गलाहं पाविस्सइ। अणागये वि ण होहिइ वाहीसंक्कमणं। बल-परक्कमेण सया तरुणो रहिस्सइ।

नरेंदो तइअओसहीए संतुट्ठो होऊण बोलीअ अत्थि तइय भेसजं अणुत्तरं, सव्वदुक्खाणं हारगं रोयमोचगं य।

पढमा–ओसही जहण्णा, बीआ–मज्झमा, तइआ–उत्तमा य। एवं मज्जाया तइया ओसहिसारिसी सा धुणइ पुव्वकम्म-मलं ण हवइ अणागयमवि मिलाणो अप्पा।

76. कौन-सी औषधि उत्तम है?

एक बार राजा के घर में कुल सूर्य उत्पन्न हुआ। अनेक सामूहिक सुलक्षण सम्पन्न पुत्र को देखकर राजा चिन्तन करने लगा–मेरा अंगजात कभी भी रोग से आक्रान्त न हो, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। अदृष्ट भविष्य को खोजते हुए नरनाथ ने अनेक वैद्यों को आमंत्रित किया। उन वैद्यों में से राजा ने तीन वैद्यों को आदेश दिया–वैद्यवर! अपने चिकित्सा शास्त्र का वर्णन करो।

प्रथम वैद्य ने कहा–नरेन्द! मेरी औषधि से पूर्व रोग जरूर नष्ट हो जाएगा, किन्तु पहले व्याधि न हो तो अधिक रुग्ण हो जाएगा।

दूसरा अनुभवी वैद्य बोला–महाराज! नि:सन्देह मेरे चिकित्सा प्रयोग से राजकुमार नीरोग हो जाएगा। यदि पहले रोग न हो तो न तो हानि होगी और न ही लाभ मिलेगा।

तीसरा कुशल वैद्य सगर्व बोला–नरेन्द्र? मैं मेरी औषधि का जिक्र कर रहा हूं। ध्यान से सुने–मेरी औषधि सोम रस से भावित है। अत: इसकी प्रतिक्रिया अस्खलित होगी। राजकुमार का शरीर कनक जैसा सुन्दर हो जाएगा। शीघ्र ही आरोग्य लाभ को प्राप्त होगा। अनागत में भी रोग का संक्रमण नहीं होगा। बल पराक्रम से सदा तरुण रहेगा।

तीसरी औषधि से राजा सन्तुष्ट होकर बोला–तीसरी औषधि अनुत्तर है। सर्व दु:खों का हरण करती है और रोग का मोचन होता है।

प्रथम औषधि जघन्य दूसरी मध्यम और तीसरी उत्तम है। इसी प्रकार–मर्यादा तीसरी भेषज के समान है। मर्यादा पूर्व कर्म का नाश करती है, अनागत में आत्मा को कभी मलिन नहीं होने देती।

77. को पंडिओ?

परिचिंतिअं मेघमुणिणा–अज्ज गआ संपुण्ण–विहावरी जागरणे ज्जेव। गमणागमणिराणं साहूणं चलगेहिं अप्फालणेण उच्चावच–भूमिए य णिद्दा ण आगमिआ। महच्छरियमेत्थ ण कुणेंति मुणिणो पुच्छणं पडिपुच्छणं, जं रत्तीए णिद्दा आगआ वा ण। कस्सवि हिययम्मि णत्थि ममत्तभावो। मज्झ घरम्मि अणेगे भिच्चा मम पुरओ पंजलिउडा ठिआ–को आएसो त्ति पुच्छंति पुणो–पुणो। णिच्छियमेव उइअम्मि दिणयरे भयवं वंदित्ता गमिस्सं नियभवणम्मि।

मत्तंडो उदयो जाओ। झत्ति उवट्ठिओ सो पच्चूसे भगवस्स महावीरस्स सरणम्मि। संतो परितप्पो मेहो सखेयणसद्देहिं णिवेइउं पउत्तो–पुज्जवरा! जहा कहिं चि णीआ जामिणी। मुणीवराणं आगमणेण पडिगमणेण अप्फलिअं मे सरीरं। ण करेंति ते सम्मरूवेण बालमुणिणं परिवालणं। भवयं एत्थ खणमेत्तमवि ण सुहमणुहवामि। विहावरीए पुण्णघडणं सुणावेउं णियहरं जाउं य णिवेयणट्ठं उवट्ठिओम्हि। भंते! परिचइअ भंडोवगरणं, रयहरणं, गोच्छगं, वत्थं, पत्तं य अहिलसेमि गंतुं अप्पमंदिरं।

मेह! मा होज्ज अणासो, दुब्बलो य। वच्छ? अधीरस्स ण होइ मुल्लं। ण मुणिअं तुमए धम्मतत्तं। कसवट्टिआ सुवण्णस्स च्चेअ होइ। पाणेहिं अहिक्कं माहप्पमप्पेइ धम्मो।

भद्द! अविण्णायो अत्थि। पुव्वजीवणचरिअं समरसु। एगग्गचित्तेण जाइसुमरणणाणेण य मुणिआ मेहमुणिणा पुव्वजीवणघडणा।

पहुचलणेसु गग्गअगिराए करेइ अणुतावं मेहमुणी। धी! धी! मे ण ओलक्खिअं जीवण-मुल्लं। तक्खणं पहुं वंदित्ता णिवेइयो सो–पहु! दुवे अक्खिणं अइरित्तं अणण्णभावेण समप्पेमि संपुण्ण-जीवणं।

मेह! अत्थि मणुवो छउमत्थो दोसभायणो य, तुम्हा चुक्कइ महुं-मुहुं। परं जो एगहुत्तं अवबोहं करिअ पुणरवि ण करेइ खलणं सो पंडिओ।

भद्द! हवेज्ज खमिरो सहणसीलो य। होउ साहणाए धीरो-वीरो-गंभीरो य।

77. पंडित कौन?

मेघमुनि ने चिन्तन किया–आज तो सम्पूर्ण रात्री जागरण में ही बीत गयी। आते-जाते साधुओं के पैरों की ठोकर लगने से तथा भूमि ऊबड़-खाबड़ होने से नींद नहीं आयी। आश्चर्य की बात तो यह है कि साधुओं ने पूछा तक नहीं (कि) रात्री में (तुम्हें) नींद आयी या नहीं। किसी के दिल में ममत्व नहीं है। मेरे घर में अनेक नौकर मेरे आगे हाथ जोड़े खड़े रहते और कहते 'क्या आदेश है?' इस प्रकार बार-बार पूछते रहते थे? निश्चित ही कल सूर्य उदय होते ही भगवान् को वन्दना करके अपने घर में जाऊंगा।

सूर्य उदय हुआ। प्रातःकाल में शीघ्र ही भगवान् महावीर के चरणों में संतप्त, परितप्त-सा मेघमुनि उपस्थित हुआ। सखेद शब्दों में निवेदन किया–पूज्यवर! जैसे-तैसे मैंने रात्री बिताई है। मुनियों के गमनागमन से मेरा शरीर पीड़ित हुआ। वे सम्यक् रूप से बाल-मुनि का प्रतिपालन नहीं करते हैं। भगवन्! यहां क्षणमात्र भी सुख की अनुभूति नहीं हो रही है। रात की सारी घटना सुनाने व घर जाने हेतु निवेदन करने के लिए उपस्थित हुआ हूं। भंते! ये सारे उपकरण रजोहरण, गोच्छग, वस्त्र, पात्र आदि को छोड़कर मैं अपने घर जाना चाहता हूं।

मेघ! निराश ओर दुर्बल मत होवो। वत्स! अधीरता का कोई मूल्य नहीं होता। तुमने अभी धर्मतत्त्व को नहीं जाना। कसौटी सोने के लिए होती है। धर्म प्राण से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।

भद्र! तुम अज्ञात हो। अपनी पूर्व जीवनचर्या को याद करो। एकाग्रचित्त से एवं जाति स्मृति ज्ञान से मेघकुमार ने अपनी पूर्व जीवन-घटना को जान लिया। प्रभु के चरणों में गद्गद वाणी में अनुताप करने लगा। छिः छिः मैंने नहीं समझा अपने जीवन-मूल्य को। भगवन्! मैंने आप द्वारा सुनकर सब कुछ जान लिया है। तत्काल भगवान् को वंदना करके निवेदन किया–प्रभो! सिर्फ दो आंखों को छोड़कर सम्पूर्ण जीवन को पूज्य-भगवान् के श्री चरणों में–समर्पित करता हूं।

मेघ! मनुष्य छद्मस्थ और दोषों का घर है–इसलिए वह बार-बार चूकता रहता है। गलती करता रहता है। पर जो एक बार अपराध कर पुनः दुबारा त्रुटि नहीं करता वही पंडित है।

भद्र क्षमावान और सहनशील बन साधना में धीर, वीर, गंभीर होवो।

78. परिवट्टणं वत्थुसहावं

मंत्तिप्पवर! अज्ज अम्हे कुत्थ आगमिआ। समन्तओ दुब्भि आगच्छइ। इमीए नालीए णीरं दुग्गंधजुत्तं अपवित्तं य। वाएण सद्धिं अणायासेण दुब्भि सव्वत्थ वित्थरीअ। पिहिअ णिवो वत्थेण नासिअं। सिग्घं अग्गओ सरिओ।

नरिंद! संसारस्स पाडिक्कं वत्थु परिणमणसावेक्खं। वत्थु अप्पसहावम्मि ण विसरूवेण, ण उण अमयरुवेण। किंतु हवइ वत्थु अणंतधम्मत्तओ।

मंति! किं मलीणं णीरं हवइ सुद्धं?

बुद्धि निहाणेण पहाणेण अण्णदव्वेहिं तं जलं कयं परिसुद्धं। सुरहिअे-णीरं पेसिअं नरनाह-पिबणट्ठं। सीअं तोयं पिवेंतो णिवो बहु पसण्णो जाओ।

मंति! सच्छं णिम्मलं सीअं सुद्ध-णीरं कओ उवलद्धं? अज्ज अमयतुल्लं महुरसीअं जलं पीऊणं मे मणो अईव तत्तिं संतिं च लहीअ।

हसमाणो पहाणो बोल्लइ-नरिंद! अत्थि इदं उदअं तीए ज्जेव दुब्भिजुत्तनालीए। पज्जवा खणिआ। एत्थ किमवि वत्थु ण विज्जइ निरट्ठयं। जं-जं पासइ तं सव्वमवि महामुल्लिल्लं। अत्थि पाडिएक्कं वत्थु पइपलं परिवट्टणसीलं।

78. परिवर्तन वस्तु का स्वभाव है

मंत्री! आज हम कहां आ गए? चारों ओर से दुर्गन्ध आ रही है। महाराज! इस नाली का पानी दुर्गन्ध-युक्त एवं अपवित्र है। पवन के साथ सर्वत्र दुर्गन्ध फैल गया है। इस नाली के पानी में दुर्गन्धि पैदा हो गयी है। राजा ने वस्त्र से नाक को बन्द कर लिया। जल्दी-जल्दी आगे चले गये। मंत्री—नरेन्द्र! संसार की प्रत्येक वस्तु परिणमन सापेक्ष है। प्रत्येक वस्तु अपने स्वभाव में न विष है न अमृत है। किन्तु वस्तु अनन्त धर्मात्मक है।

मंत्री! क्या कभी मलिन पानी भी शुद्ध होता है? बुद्धि निधान प्रधान ने सुरभित पानी राजा को पीने के लिए भेजा। शीतल पानी पीकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। मंत्री—ऐसा शुद्ध निर्मल शीतल जल कहां से लाया! आज अमृत तुल्य मधुर शीत जल पीकर मुझे अतिशय तृप्ति, शान्ति की अनुभूति हुई है।

हंसता हुआ प्रधान बोला—राजा! यह उदक उसी मलिन दुर्गन्धयुक्त नाली का है। पर्याय क्षणिक है। यहां कुछ भी वस्तु निरर्थक नहीं है। जो-जो देखते हैं वह सब महामूल्यवान है। प्रत्येक वस्तु प्रतिपल परिवर्तनशील है।

79. खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे

चोरिअ चंडप्पज्जोयणनरनाहेण उदअणमहाराअस्स सुवण्णगुलिआ चेडिआ। बहुअवबुज्झकरणे वि ण मन्नीअ सो णिवो। आरद्धं जुज्झं। पराजिओ पज्जोयणो पाडीय कारागारे य। उदयणनरनाहेण पज्जोअणस्स पंजरम्मि 'ममदासीपई' ति लिहाविज्जीअ। पच्चोरुहइ विजयं काऊण णियपएसे उदयणो। मग्गम्मि समागओ संवच्छरीमहापव्वस्स महामुल्लिल्लो अवसरो। दिवसमेत्तं विस्सामं काऊण तत्थ ज्जेव संवच्छरीपव्वं मुन्नइ। पोसहोवासं करइ। संज्झासमयम्मि पडिक्कमणं करित्ता सव्वजीवरासीहिं साअं खमतखमणं आअरइ। उइए सुज्जे अमच्चपरियरेहिं खमायाअणं पच्छा गयो कारागारे, उज्जुमणो उदयणो सब्भावणाए खमतखमणं करीअ पज्जोयणेण। तक्खणं साहिओ आसुरत्तो चंडप्पज्जोयणो–नरिंद! किमेअं धम्मस्स पडिफलं? एगओ कारागार बंधणे पडिओ म्हि अण्णओ खमायाचणं करिज्जइ। एअं विडम्बमेत्तं। इमा विचित्ता दुधारिआ छुरिआ। उदयण! तुब्भाण इदं सद्दं दड्ढोवरिं लवणं सारिसं। तुज्झ केरिसो कोहो केरिसो माणुण्णअणं। हंत! अहुणावि ण ओलक्खिअं जहत्थं जिण–देसिअं धम्मतत्तं। जइ मुणियधम्मरहस्सं जीवणम्मि आचिण्णं ण हवइ णवरं सवणेण किं।

जो जाणंतो वि ण जाणइ, कुणमाणो वि ण कुणइ, हवइ तत्थ वंचणं विडंबणत्तं य। संपइ तिरोहिओ तुह अंतरंगो कवडरेहाए। अओ मुहालाव संलावेण किं! जइ सच्चहिअयेण होउ खंतिक्खमो, ता होउ दूरं वेरभावो।चंडपज्जोअणस्स वत्थविअसद्देहिं उग्घडिआ उदयणणिवस्स दुवेवि णयणा। रिउमणो उदयणो विणय–भावेण कयंजलीउडो भुज्जो–भुज्जो खमायाचणं करइ। उभयपक्खम्मि वायावरणं सव्वं भव्वं जायं।

79. क्षमादान देता हूं सबको : क्षमा मुझे दें सारे जीव

उज्जयनी का राजा चंड प्रद्योत उदयन महाराजा की 'सुवर्ण गुलिका' दासी को चुराकर ले गाय। बहुत समझाने पर भी राजा नहीं समझा? युद्ध आरम्भ हो गया। महाराज प्रद्योतन पराजित हो गए और कारागृह में डाल दिए गए। राजा उदयन ने प्रद्योतन के पिंजरे पर 'ममदासी पति' (मेरे दासी के पति) यह नाम लिख दिया। उदयन युद्ध में विजय प्राप्त कर पुनः अपेन राज्य में आ रहे थे। मार्ग में संवत्सरी महापर्व का अमूल्य अवसर आ गया।राजा ने मार्ग में एक दिन विश्रज्ञम कर वहीं संवत्सरी महापर्व मनाया। पोषध उपवास किया। संध्या समय में प्रतिक्रमण कर चारगति चौरसी लाख जीव राशि से क्षमायाचना की। सूर्य उय होने पर अमात्य नौकरों से क्षमायाचना करके फिर कारागृह में गए। ऋजुमन उदयन सद्भावना से प्रद्योतन से क्षमायाचना की। तत्क्षण आसुरक्त चंड प्रद्योतन बोला–नरेन्द्र! क्या यही धर्म का प्रतिफल है। एक ओर तो मैं कारागृह के बन्धन में पड़ा हूं, दूसरी ओर क्षमाायचना की जा रही है। यह तेरी क्षमायाचना विडम्बना मात्र है। विचित्र है। तेरी दुधारी छुरिका, उदयन! तुम्हारे ये शब्द जले हुए पर नमक डालने जैसे हैं। कैसा कोप? कैसा अहंकार का उन्नयन? हंत अभी भी तुमने नहीं जाना यथार्थ तत्त्व को? जिन भाषित धर्म को? ज्ञात धर्म रहस्य यदि जीवन में आचरित नहीं हुआ तो केवल श्रवण करने से क्या लाभ?

जो जानता हुआ भी नहीं जानता, करता भी नहीं करता फिर तो वह धर्म वंचना और विडम्बना मात्र है। अभी तुम्हारा अन्तरंग कपट रेखा में तिरोहित है। अतः व्यर्थ ही आलाप संलाप से क्या? यदि सच्चे हृदय से क्षमायाचना हो तो वैर–भाव दूर हो सकता है। राजा चंड प्रद्योतन के वास्तविक शब्दों ने उदयन राजा के दोनों नयन खोल दिए।

महाराजा उदयन ने विनयभाव से हाथ जोड़कर दिल खोलकर राजा के साथ बार–बार क्षमायाचना की।

दोनों पक्ष का वातावरण बहुत सुन्दर बन गया।

80. चक्कवट्टिस्स भोयणं

पंजलिउडो माहणो अहिवंदण-थुइ-अच्चणं-गारवगाहं य जम्पमाणो पविट्ठो रायद्दारे।

पुट्ठं नरनाहेण—माहण! एत्थ किमट्ठं आगमिओ?

किं विवक्खसि?

माहणो—नरिंद! दालिद्दजणिअ दुक्खेण पडिपलं मे हिअयं पीलइ। तम्हा हे नरेस! कुणउ अणुग्गहं।

नरनाहेण—माहण! याचेज्ज जहेच्छिअं वरदाणं।

माहणो कहइ—करिस्सं भज्जाए सद्धिं परामरिसं। गयो हमम्मि।

सुहगे! णरिंदो देह इच्छिअ-दाणं, तुए किं अहिलसिअं!

सामी! होयव्वं पडिदिणं नवणवघरेसु सडरस-भेयणं, तआणंतरं होयव्वं दाहिण-रुवेण एगा सुवण्ण मुद्दा।

बीअइ-दिवसे पच्चूसकाले उवट्ठिओ माहणो राय-मंदिरे। रक्खिओ इत्थिअ परामरिसं णिवस्स सम्मुहे।

तक्कालं किवालुणा नरेण 'तहत्थु' त्ति अप्पिअं वरं।

माहण—हिअयम्मि समुप्पण्णो अबीआणंदो।

तयाणिमेव रण्णा कारिआ णयरम्मि उग्घोसणा।

चक्कवट्टी वियारइ—पच्चक्खं बंभणो दरिद्दो, मंदभग्गो य, जओ आगमिरा लच्छी तेण पच्चावलिआ।

पढम-दिवसे बंभणदंवई जिमिउं णिवस्स पागलासाए समागया। जिमाविओ चक्कवट्टी सरस-खीररसवई पक्कण्णं, णाणावंजणजुत्तं साउभोयणं य।पच्छा दिण्णं सुवण्णदिणारं।णयरम्मि पडिदिणं एए जिमिउं गच्छंति णविणहरेसु अतिहि-रुवेण। जत्थ कत्थ वि भोअणं करेंति तक्खणे चक्कवट्टिभोअणं सुमरिऊण ते रोअणं करेंति। तक्खणं चक्कवट्टी भोयणस्स सई तरुणा जाया, भोयणं सरमाणो माहणो रोतुं पउत्तो।

जारिसं लक्खपजत्तं करणेणवि माहणस्स पुणरिव चक्कवट्टी भोयणपत्ति परम दुल्लहा जाआ तारिसं नरभवो दुल्लहो।

80. चक्रवर्ती का भोजन

हाथ जोड़कर ब्राह्मण अभिवंदन, स्तुति, अर्चना और राजा की गौरव-गाथा गाता हुआ राज दरबार में प्रवेश किया।

राजा ने पूछा—माहण! यहां कैसे आए! क्या इच्छा है। हे राजन! दरिद्रता के दु:ख से प्रतिपल हृदय पीड़ित रहता है। हे नरेश! अनुगह करे।

भूदेव! इच्छित वरदान मांगो!

राजन्! मेरी पत्नी से परामर्श कर फिर वरदान मांगूंगा। (कहकर) अपने घर गया।

सुभगे! नरेन्द्र इच्छित दान दे रहे हैं, तू क्या चाहती है।

स्वामी! प्रतिदिन नए-नए घरों में षड्रस भोजन मिले और भोजन के बाद दक्षिणा रूप में एक सुवर्ण-मुद्रा जरूर होनी चाहिए। दूसरे दिन प्रात:काल ब्राह्मण राजभवन में उपस्थित हुआ। स्त्री के साथ हुए परामर्श को राजा के सम्मुख रखा। तत्काल राजा ने 'ऐसा ही हो' कहकर वरदान दिया। ब्राह्मण के मानस में अद्वितीय आनन्द हुआ। राजा ने शीघ्र ही नगर में घोषणा करवा दी।

चक्रवर्ती ने सोचा ब्राह्मण प्रत्यक्ष मंदभाग्य और दरिद्र है। क्योंकि आती हुई लक्ष्मी को लौटा दिया। प्रथम दिन ब्राह्मण-दम्पति भोजन करने के लिए चक्रवर्ती की पाकशाला में गयी। चक्रवर्तीने सरस और खीर पकवान एवं नाना प्रकार के व्यंजन युक्त स्वादु भोजन करवाया, फिर सुवर्ण मुद्रा दान रूप में दी। दोनों नगर में प्रतिदिन नए-नए घरों में अतिथि रूप में भोजन के लिए जाते हैं। जहां कहीं ये दोनों भोजन करते हैं—तत्क्षण चक्रवर्ती के भोजन की स्मृति उभर आती है। भोजन की स्मृति करके ब्राह्मण रोने लग जाता। लाख प्रयत्न करने पर भी ब्राह्मण को चक्रवर्ती जैसा भोजन नहीं मिला वैसे ही मनुज को मनुष्य का जन्म दुबारा मिलना महा मुश्किल है।

81. जागरउ मण मंदिरं

अत्ताए बुद्धिपरिक्खणं करिउं आहूआ सुण्हा। पमुइअ-पंजलिउडा उवट्ठिआ बहू—मायर! का आणा? को आएसो?

णिसामेह! अहं गच्छामि बहिं, अप्पण-भवणम्मि ण पविट्ठेज्ज अंधयारो।

पयडीभद्दा णवोढा चिंतेउं लग्गीअ। कल्लं करिस्सामि एआरिसी ववत्था जाए मंदिरम्मि ण पविसेज्ज अंधयारो। पिहीअ सव्वाइं वायायणाणं पमुहदारं च। लगुडं नेऊण चिट्ठिय सयं दार-समीवं। जह-जह वच्चइ रयणी तह-तह वड्ढइ अंधयारो। चिन्तइ बहू-ण जाणेमि अहं, कुत्थओ पविट्ठो अंधयारो। जट्ठीए पीट्टइए, कुट्टइ, ताडइ य। तयावि कालो-कज्जलो अंधयारो पडिक्खणं परिवड्ढइ।

इयंतं आगमिआ सासू। उग्घाडिअ कवाडं। रोयमाणी सविणय बहू भणइ सासु! पहवइ रत्त-धारा हत्थेसु, टुट्टीअ जट्ठी, तयावि ण णट्ठो अंधयारो। हसमाणी बहूआए मत्थयं करेण छीवंती अत्ता साहेउ पउत्ता-सुण्हा! ण विण्णयं इमस्स विण्णाणं, पाससु बहू! कहं पणट्ठो होइ अंधयारो। पज्जालिओ झत्ति दीवो। सुण्हा! एवं णट्ठो अंधयारो। पंजलिउडा कहेइ सा—सासु! मुणिओम्हि अंधयारप्पेसणकलं त्ति कहन्ती अत्ताए चरण-कमलम्मि सहरिसं णिवडिआ णवोढा।

साहग! एवमेव उज्जागरसु सम्म-णाणेण मण मंदिरं।

81. मन-मंदिर को जागृत करो

सास ने पुत्र-बहू की बुद्धि की परीक्षा करने के लिए उसे बुलाया। बहू! इधर आओ। प्रमुदित अंजलिबद्ध बहू सास के पास उपस्थित हो गयी।

माता जी! क्या आज्ञा? क्या आदेश?

बहू! सुनो मैं आज कहीं बाहर जा रही हूं। पीछे से तुम ध्यान रखना अपने भवन में कहीं अन्धेरा न घुस जाए। प्रकृति भद्र नव वधू चिन्तन करने लगी। ऐसी व्यवस्था करूंगी जिस कारण से हमारे मन्दिर में अन्धकार प्रवेश ही न कर सके। भवन के सभी वातायन बन्द कर दिए। प्रमुख द्वार पर स्वयं दण्ड लेकर बैठ गयी। जैसे-जैसे रात्री बीतती गयी—वैसे-वैसे अन्धेरा बढ़ता गया। बहू ने सोचा—न मालूम यह अन्धेरा कहां से प्रवेश कर रहा है। लाठी से पीटने-कूटने और ताड़ने लगी फिर भी काला कजल अंधेरा प्रतिक्षण बढ़ता ही जा रहा था। इतने में सास आ गयी। द्वारा खोला। रोती हुई बहू सविनय बोली—सास! हाथों में खून की धारा बह रही है, लाठी भी टूट गयी। फिर भी इस ढीठ अन्धेरे ने नहीं माना, अन्दर घुस गया। बहू के सिर पर हाथ रखकर हंसती हुई सास ने कहा—बहू! अन्धेरे को भगाने का विज्ञान तूने नहीं सीखा। देख बहू! अन्धकार कैसे दूर होता है, मैं बतलाती हूं। सास ने शीघ्रता से दीपक जलाया और अन्धेरा भाग गया। बहू! अन्धेरा ऐसे भागता है। बहू हाथ जोड़कर 'सास! अन्धेरे को भगाने की कला अब जान गयी हूं', ऐसा कहती हुई सास के चरण कमल में गिर गयी।

साधक! इसी प्रकार सम्यक् ज्ञान के द्वारा अपने मन मन्दिर को उजागर करो।

82. खंति सेविज्ज पंडिए

आयरियप्पवराण धम्म-देसणं सवणट्ठं उवट्ठिआ विज्जंति उल्लसिअमणा अणेगे सेट्ठि-गाहावइ-इत्थि-बाल-जुवाण-वुड्ढा नरनारिणो य। पावयणमज्झे गुरु पायकमलं पणमिऊण ताण पुरओ अवणअमत्थओ विनयसीलो-कयंजली एगो सीसो णिवेयइ—भयवं! अणुजाणह महुअरीयाए गंतुं समुच्छुकोहं। मत्थअं-धुणमाणेण सखेयेण उइण्णं आयरियेण-अज्ज पव्वदिवसे करेंति बाल-जुवाण-थेरा सामाइअपोसहोववासाइं तुह करसि आहारं, कि उइयं? वच्चइ अट्ढदिणं सेसं अइक्कमं होइ। पच्चक्खेह उववासं।

भंते! संति संघम्मि बहुमुणीसाहुणीआ ते करेंति घोरतवं। परं, अहं छुहा खेअखमणे अक्खमो। तिक्ख-दिट्ठीए पासमाणेण आयरियेण ताडिओ सीसो मम्मिगसद्देहिं। वच्च-वच्च, जहासुहं करेह।

वण्हि-सरिच्छा हवइ धरणी। सव्वंपि वायावरणं तावमअं जाअं कूरडअमुणी गुरुणं अणुण्णं नेऊण्ण मज्झण्णकालम्मि असंसत्तो अमुच्छिओ अणुव्विग्गो भत्तपाणगवेसमाणो मंदं-मंदं चरेइ। मुहाजीवीकप्पिअंफासुयं पडिगहिअ अरसं-विरसं भोयणं जहट्ठाणं आगओ, रक्खिओ गुरूण-अग्गओ आहारं। तं विलोएत्ता गुरुवरा आसुरत्तो जाओ।रोसेण धम्म-धमंतो तक्कालं थुक्कइ भोअणपत्ते।

विणयसीलो सीसो तं भायणं गहिऊण एगंतं गमित्ता ठिओ, कयं 'इरियावहियपडिक्कमणं' अप्पज्झाणम्मि लीणोविचिंतेइ मुणी—गुरुवरेण कयं अणुग्गहं, पक्खिवइ घयं, तेण हवइ अरसोवि सरसाहारो। एवं अणुप्पेक्खं करेन्तो कम्मगंठि भेत्तूण विसुद्ध-णाणं पत्तं। देव-देवीहिं महुसवो आरद्धो।

विम्हिअ-आयरियेण पुट्ठं—अकम्हा एवं कहं जायं? णिवेइअं सीसेहिं घडिअघडणं। एव्वं खंतिधम्मायरणेणं सव्वं भव्वं अपुडलं य जाइ।

82. पंडित क्षमा का आसेवन करता है

आचार्य प्रवर की धर्म देसना सुनने के लिए उल्लसित मन वाले अनेक सेठ, गाथापति, स्त्री, बालक, युवक, वृद्ध व नर-नारी उपस्थित थे। प्रवचन के बीच गुरु के पादकमल को नमन करके गुरु के सम्मुख सिर झुकाकर करबद्ध एक शिष्य निवेदन करता है—भन्ते! मुझे मधुकरी जाने की आज्ञा प्रदान करें। मस्तक धुनते हुए गुरु ने खेद व्यक्त करते हुए कहा—शिष्य! आज पर्व का दिन है, बालक, वृद्ध, युवक सामायिक, उपवास व पौषध करते हैं। क्या तू अकेला आहार करेगा? क्या यह तेरे लिए उचित है? आधा दिन बीत गया और शेष समय भी ऐसा ही बीत जाएगा। प्रत्याख्यान कर ले। भन्ते! इस धर्म-संघ में बहुत से साधु व साध्वियां घोर तपस्या करने वाले हैं। पर मैं क्षुधा वेदना को सहने में अक्षम हूं। तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए आचार्य ने मार्मिक शब्दों से ताड़ना दी—'जा, जा' जैसा मुख हो वैसा करो। धरती धूप से उत्तप्त हो गयी। सारा वातावरण तप्त हो गया। कूरगड़मुनि गुरु की आज्ञा पा अनासक्त भाव से अमूर्च्छित व अनुद्विग्न होकर भक्त पान की गवेषणा के लिए मन्थर गति से चल रहे थे। मुधाजीवी, कल्पित, प्रासुक, अरस-विरस आहार ग्रहण कर यथास्थान आ गए। गुरु के सम्मुख आहार रखा। आहार को देखकर आचार्य आसुरक्त हो गए। क्रोधित होकर पात्र में थूक दिये। विनयी शिष्य पात्र को उठाकर एकान्त में जाकर बैठ गया। 'इरियावहिया' प्रतिक्रमण किया। आत्मध्यान में लीनह ो मुनि ने चिन्तन किया गुरुदेव ने पात्री में घी डालकर मुझ पर बहुत बड़ा अनुग्रह किया है। जिससे निरस भी सरस बन गया। इस प्रकार अनुप्रेक्षा करते हुए कर्म ग्रन्थियों को तोड़कर वह परम केवल ज्ञान को प्राप्त हो गया। देव-देवियों ने महोत्सव मनाया। विस्मित आचार्य ने पूछा—अकस्मात् क्या हो गया? शिष्यों ने सारी घटित घटना की जानकारी दी। इस प्रकार क्षमा धर्म के आचरण से सब कुछ भव्य एवं अनुकूल हो जाता है।

83. जीवणस्स सारं णाणं

वच सुअ, वच्च, पोट्टगं नेऊण चुल्लपिउस्स समीवे, भाउणिज्जो सिग्घं रयणचागचिग्ग-हीरग-पोट्टगं गेण्हित्ता उवट्ठिओ आवणम्मि। समप्पिअं गंठिबद्धरयणं। पिउज्ज! विक्किणिज्जा उइय-मुल्लेण इमा सामग्गी।

पुत्त! उग्घडसु गंठिं। तक्कालं भाउणिज्जो अप्पणहत्थेहिं उग्घाडइ गंठिं।

चुल्लपिऊ विलोइत्ता रयणं साहेउं पउत्तो-पुत्त! संपइ रक्खसु इमं सामग्गिं सुद्धवत्थे बंधिऊण आभरणकरंडिगाए, जया अहं याचिस्सं तया मम समप्पियव्वं। संतुट्ठो भाउणिज्जो गयो हम्ममि, पाउक्कयं सव्वं वइयरं मायरं। मायर! रक्ख णिज्जं रयणं सुद्धवत्थे बंधिऊण मंजुसाए। पाडियारिया पुणो-पुणो। भाउणिज्जो जया बुद्धिजुत्तो जाओतया थोवदिणाणि पच्छा उइयसमयं लक्खिऊण चुल्लपिऊ भणइ-वच्छ! आणेह तं पोट्टगं। भाउणिज्जो तं पोट्टगं अप्पणहत्थेहिं उग्घाडइ। पासित्ता हीरगं विम्हिओ जाओ। हा! हा! उड्ढज्झुणीए सुयेण सूइअं-नेवं-नेवं मायर! ण इमं रयणं, पच्चक्खं कायखंडं।

पिअपुत्त! णिच्छियमेव परिवट्टिअं तुज्झ चुल्लपिऊणा। ईसिं विहसमाणेण सुयेण चोइअं-अम्ब! ण फासियं, ण विज्जए तस्स हिअयम्मि अंतस्सल्लं। परिछड्डसु मिच्छा संदेहं। भाउणिज्जो गहित्ता झत्तिं पोट्टगं सिग्घं पविट्ठो आवणम्मि। गहिर-सरेण वोत्तुमाढत्तो-ताय! भणसु सच्चं-सच्चं वइयरं। तद्दिवसे कहमेअं ण साहियं जहत्थं। पुत्त! अविण्णायो आसि तुमं, पढमं वागरणेण किं? जइ कहेज्ज मए जहत्थं अस्स विसयम्मि ता तुह मायर-माणसं संदेहिरं होज्ज। संपइ तुमं णाणाविज्जा पारंगओ।

गिह कज्जम्मि, आयाणप्पयाणम्मि, आवण-वावारम्मि य परिचिओ जाओ। परिक्खाकरणक्खमो वि। संपइ महकहणेण एगहुत्तं पुणो तस्सपरिक्खा कायव्वा।

83. ज्ञान जीवन का सार है

जा बेटा! हीरों की गठरी लेकर अपने चाचा जी के पास जा। भतीजा शीघ्र रत्नों की पोटली लेकर दुकान पर जाता है। चाचा से कहता है मां ने यह रत्न बेचने के लिए दिए हैं। उचित मूल्य में बेच देना। चाचा पुत्र से गठरी खुलवाता है व रत्नों को देखकर कहता है—पुत्र! अभी इस सामग्री को स्वच्छ वस्त्र में बांधकर रख दो। जब हम मांगेंगे, तब ले आना। सन्तुष्ट हो भतीजा अपने घर गया, माता को सारी बात बता दी। माता ने स्वच्छ वस्त्र में लपेट मंजूषा में रख दी। तथा सार संभाल भी करती रही। भतीजा जब समझदार हो गया तब कुछ समय के बाद उचित समय देखकर चाचा ने कहा—वत्स अब उस गठरी को ले आओ। भतीजे ने घर में अपने ही हाथों उसे खोलकर देखा। हीरे को देख विस्मित हुआ ऊंचे स्वर में माता से कहता है माता यह हीरे नहीं बल्कि कांच के टुकड़े हैं।

प्रिय पुत्र! निश्चित ही तेरे चाचा ने बदल दिए हैं। हंसता हुआ बेटा बोला—अम्ब! चाचा ने इनका स्पर्श तक भी नहीं किया। उनके दिल में किसी भी प्रकार का शल्य नहीं है। मिथ्या भ्रम तोड़ दो मां। और फिर उस पोटली को उठाकर दूकान पर आता है और चाचा से कहता है चाचाजी! बिल्कुल सच बोलना, झूठ मत बोलना, आपने उस दिन यथार्थ बात क्यों नहीं बताई कि ये हीरे नहीं हैं। उस समय तू इन सब बातों से अज्ञात था। और उस समय यदि मैं कुछ कहता तो तेरी मां के मन में संदेह उत्पन्न हो जाता। अब तुम अनेक विद्याओं में पारंगत हो गए हो। गृह-कार्यों में आदान-प्रदान में व्यापार में परिचित हो गए हो। रत्न परीक्षा करने में समर्थ हो। अब मेरे कहने से एक बार उसकी परीक्षा करनी चाहिए।

84. इच्छा हु आगाससमा अणंतिया

विहरंति वणमज्झे सुहंसुहेण पसु-पक्खिणीओ। एगासिअं कयं देवाहिं दिव्वझूणी—जो पसु-पक्खी ण्हाहिइ इमम्मि सरोवरम्मि ताणं विलुप्पइ पसुजोणी, जइ मणुओ ण्हाहिइ सो वावइ देवत्तणं। एवं णिसुणित्ता वलिमुहेण साहेउं पउत्तो—वाणरी! अस्स ठाणस्स अइमहप्पो अत्थि अम्हेहिंवि ण्हायव्वं। ते समुक्कंट्ठिआ सरोवरम्मि पवेसिअ ण्हाहिअ य! विलुत्तं पसुत्तणं, ते लद्धं नरभवं। अच्छरियं ज्जुत्तं दोण्हिजणा आणंदं अणुहवंति। वाणरो भणइ पिअयमे, रईए सह पज्जुण्णं विव मए सद्धिं सोहइ तुमं। दोण्हि बहु-हरिसिआ जाआ।

चवलो तरुणो कहइ—सुहगे! पुणरवि एगहुत्तं सरोवरम्मि ण्हायव्वं। पुणो-पुणो परिकहिज्जइ परं ण मन्नइ जुवई। सामी! अई लोहो ण कायव्वो, मा कुण अण्णणग्गहं। पिअयमे! हवेज्ज को एआरिसो मंदभग्गो जो दंडेण पडिसेहए अब्भागच्छमाणिं दिव्व-लच्छिं। सामी! तुम्हाण एआरिसी समीहा तु णिअंतं हस्सप्पयं। लोहवसेण अपरिपक्कबुद्धी मुक्खो देवत्तणस्स कोउहल्लवसेण अण्णग्गही झडित्ति णिवडिओ तडागम्मि। हवेज्ज सो ज्जेव होयव्वं। तेण हारिओ दुल्लहो मणुअजम्मो।पुणरवि वाणरो मूलरूवेण जाओ। तरुणी विम्हिआ। अंसुजलाउल-लोयणा जाया! जूरइ वाणरो, रूदंत्तो करइ बहु अणुतावं।

कहिअं पावयणे इच्छा हु आगाससमा अणंतिया। परं जे जणा इच्छाणिरोहं ण जाणंति सो वाणरसरिसाणुतावं करेंति।

84. इच्छा आकाश के समान अनन्त है

किसी जंगल में पशु-पक्षी सुखपूर्वक रह रहे थे। एक बार वहां देवताओं के द्वारा दिव्य ध्वनि हुई—जो भी प्राणी इस सरोवर में स्नान करेगा उसकी पशु योनि विलुप्त होगी और अगर मनुष्य स्नान करेगा तो वह देव बन जाएगा।

इस प्रकार सुनकर एक बन्दर ने बन्दरी से कहा—इस स्थान का बहुत बड़ा महत्त्व है। हमें भी सरोवर में स्नान करना चाहिए। पशुता विलुप्त हो गयी। महामूल्य नरभव को प्राप्त कर लिया। आश्चर्य युक्त दोनों लोग आनन्द का अनुभव करने लगे। बन्दर ने कहा—रति के साथ कामदेव की तरह तुम मेरे साथ सुन्दर लग रही हो। दोनों के खुशी की कोई सीमा न रही।

चपल तरुण ने युवती से कहा—सुभगे! एक बार हमें दुबारा स्नान और करना चाहिए। बार-बार कहा पर युवती ने नहीं माना, स्वामी! ज्यादा लोभ नहीं करना चाहिए। अज्ञान आग्रह मत करो। प्रियतम! ऐसा कौन भाग्यहीन होगा जो आती हुई लक्ष्मी को दंडे से मारकर भगा देगा। स्वामी! तुम्हारी यह इच्छा नितान्त हास्यप्रद लगती है।

लोभ! बस अपरिपक्व बुद्धि वाला मूर्ख बन्दर देव योनि को प्राप्त करने के अनाग्रहवश शीघ्र तालाब में कूद पड़ा 'अन्ततोगत्वा' वही हुआ जो होना था। दुर्लभ मनुष्य जन्म को हार गया। बन्दर मूल रूप में आ गया। तरुणी अत्यन्त विस्मित हो गयी, आंखों से जलधारा बह रही थी। बन्दर भी दु:खी हुआ। रोता हुआ बन्दर बहुत अनुताप करने लगा।

85. वेयणा-विमुत्ती

एगासिअ इब्भपुत्तो अणाहीकुमारो मित्तेण सह गमिओ उज्जाणम्मि कीअणट्ठं। अकम्हा उप्पज्जइ तस्स अच्छीए अउला बेअणा, णिवडिओ धरणीए। तक्कालं उवट्ठिआ विज्जा-मंत-तंत-सत्थ-कुशलातिगिच्छगा। तेहिं कया णाणोवयारा, परं लाहं ण पावीअ। सब्बेवि उवाया णिप्फला। न भूओ आमोवसमो, पच्चुल्लं परिवड्ढिओ घोरपीला। विचिंतिअं निसाए सेट्ठि-सुएण ण होइ दुक्खविमोयणं दिव्वोसहप्पहावेण। ण च अट्ठ-समट्ठो। मे अम्मताय-भायर-भइणी-भारियाइआ सव्वे वि विरह-विहुरा आउल-वाउला जाया। सव्वेसिं मणाइं दुक्खेण पीडियाइं जायाइं। हिमाणीहयं विव वयण-कमलं। रोतुं पउत्ता वालव्व तयावि ण होमि रोयेण मुत्तोहं।

मज्झसव्वरीए चिंतेउमाढत्तो कुमारेण—जइ मुंचेज्जोहं सइं बेअणाओ ता खलु अवस्समेव केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं गच्छिस्सं। एवं चिंतणेण परिवट्टइ बेअणा। दिड्ढ-संकप्प-सत्तीए हवइ कुमारो सिग्घं पीला मुत्तो सुह-सुहेण सुवइ कुमारो।

पहायकालम्मि परिवार सम्मुहे रक्खिअं इब्भकुमारेण णियाहिप्पायं—ताय! अज्ज अहं नाहो जाओ। इच्छेमि अहं ते अणुण्णं अत्तहियट्ठयाए पंचमहव्वयाइं उवसंपज्जित्ता विहरामि। पडिगहियं अणगारधम्मं, खंत्तो, निरारम्भो जाओ अणाहीकुमारो।

85. वेदना से विमुक्ति

एक बार सेठ पुत्र अनाथि कुमार अपने मित्र मंडली के साथ उद्यान में खेल खेलने के लिए गया। अकस्मात् उसके आंखों में अतुल पीड़ा उत्पन्न हो गयी। वह धरती पर गिर पड़ा। विद्या, तंत्र एवं मंत्र शास्त्र कुशल चिकित्सक तत्काल उपस्थित हो गए। उन्होंने विविध प्रयत्न किये; पर स्वास्थ्य लाभ नहीं हो पाया। सब उपाय निष्फल हो गये। रोग उपशान्त नहीं हुआ प्रत्युत शरीर में घोर वेदना बढ़ती गयी। रात्रि में अनाथी कुमार ने चिन्तन किया औषधियों के प्रभाव से दु:ख विमोचन नहीं हो सकता है और न ही धन सहायक बन रहा है। मेरे पिता-माता, भाई-बहिन, स्त्री आदि सब विरह से आकुल-व्याकुल हो रहे हैं। सबकी मन:स्थिति दु:ख से पीड़ित हो रही है। हिम से आहत की तरह मुख-कमल हो रहा है। बालक की तरह रोने पर भी मैं रोग से मुक्त नहीं हो रहा हूं।

मध्यरात्री के समय कुमार के दिमाग में चिंतन चला। यदि मैं वेदना से मुक्त हो जाऊं तो अवश्य ही केवली भाषित धर्म का शरण ग्रहण करूंगा। इस प्रकार चिन्तन करते-करते वेदना कम हुई। दृढ़ संकल्पशक्ति से कुमार जल्दी ही वेदना से मुक्त हो गया। वह सुखपूर्वक सो गया।

प्रात:काल श्रेष्ठीपुत्र अनाथी कुमार ने अपने अभिप्राय को पारिवारिक जनों के समक्ष प्रकट किया। उसने कहा—पिताजी! आज मैं नाथ बन गया हूं। आपकी आज्ञा चाहता हूं—पंचमहाव्रतों को आत्महित के लिए स्वीकार कर विहार करूंगा। अणगार धर्म को ग्रहण कर, शान्त-दान्त निरारम्भ हो गया अनाथी कुमार।

86. पच्चुप्पन्नमई

उट्ठसु ताय! सिग्घं उट्ठ, अप्पघरत्तो गममाणो दिट्ठो मे एगो परपुरिसो। तक्कालं उट्ठिओ नडो,पलोएइ इओ-तओ परं ण लद्धो सो पुरिसो। वच्छ! कुत्थ गमिओ पुरिसो?

ताय! सो तुरियं तुरियं हरओ बहिं पलाइओ। नडो णिअभारियं पइ संसयसीलो जाओ। भारिआए हिअय-गई तिव्वा जाया, कंपकंपिआ य। अईव खेयखिन्ना वाहमाणा बाहजलं मिलायमाण-हिअयेण णिवडिआ पियपुत्त-चलणेसु। पुत्त! कुव्वइ अणुग्गहं। तुज्झ ताओ रुट्ठिओ,ससंकिओय। 'सिढिलायारिणी' त्ति मण्णिअ मज्झ अवमाणणं करेइ। मायर! पढमं मुहुं-मुहुं कहियं जं तुमए पेम्मपुव्वयेण वट्टियव्वं, अण्णहा ण होइ कुसलं। मं पुरओ तुह वंचग-वित्ती ण चलिहिइ।

वच्छ! भवियव्वा अकहणिज्जा खमेह मे अवराहं। बीयं एआरिसं ण समायरिस्सं। एगासिअं सव्वरीए अकम्हा नडपुत्तो रोहओ बाढसरेण जंपइ-ताय! पेक्खउ तुरियं पेक्खउ पुरिसं।

तक्खणं उट्ठिऊण पिउणा पुट्ठं-पुत्त! कुत्थत्थि सो? पुत्तो णियछायं दरिसावेइ। वच्छ! किं अहेसि परज्जु एव एआरिसो पुरिसो? 'आम' त्ति कहमाणो रोहयो उड्ढज्झुणीए विहसिओ। जणयेण पुट्ठं-वच्छ! एत्थ हसणस्स किं कारणं?

रोहयेण परिफुडिअं सव्वं वइयरं।

जणओ चिंतेउमाढत्तो मे पुत्तो एआरिसो बुद्धिनिहाणो, धीमंतो, पच्चुप्पन्नमइजुत्तो य। एवं पसंसमाणेण जणयेण पुत्तो उरेण उवगूढो।

86. प्रत्युत्पन्न मति

उठो पिताजी, शीघ्र उठो। अपने घर जाते हुए अन्य पुरुष को मैंने देखा है। तत्काल नट उठकर इधर-उधर देखने लगा। पर वह पुरुष नहीं मिला। बेटा! कहां गया वह पुरुष।

तात! वह जल्दी-जल्दी घर से बाहर भाग गया।

नट पुरुष अपनी पत्नी के प्रति संदेहशील बन गया। स्त्री की हृदय की गति तीव्र हो गयी, वह कांपने लगी। अतीव खेद-खिन्न आंखों से नीर बहाती हुई म्लान मुख हृदय से प्रिय-पुत्र के पैरों में जा गिरी। पुत्र! अनुग्रह करो! तेरे पिता मुझसे रुठ गये। सशंकित हो गये। मुझे शिथिलाचार समझकर मेरी अवमानना करते हैं।

माता! मैंने तुझे पहले ही बार-बार समझाया था। तुम मेरे साथ कुशलता से बर्ताव करो। नहीं तो अच्छा नहीं होगा। मेरे सामने तेरी वंचग वृत्ति नहीं चलेगी।

बेटे! भवितव्यता अकथनीय है? मेरे अपराध को क्षमा करो। भविष्य में ऐसा आचरण कभी नहीं करूंगी। एक बार मध्यरात्रि में आकस्मिक नट-पुत्र रोहा ऊंचे स्वर से बोला—पिताजी! देखो-देखो जल्दी देखो वह पुरुष जा रहा है। तत्क्षण उठकर नट ने पूछा बेटे! कहां है वह पुरुष? पुत्र ने अपनी छाया दिखाई।

वत्स! क्या परसों भी यही पुरुष था? हां पिताजी, कहता हुआ रोहा ऊर्ध्व-ध्वनि से हंस पड़ा। पुत्र! अभी यहां पर हसंने का क्या कारण? पिताजी को सारा जिक्र सुनाया। पिता ने सोचा—मेरा पुत्र इतना कुशाग्र बुद्धि वाला है। धीमान् प्रत्युत्पन्नमति वाला है। मुझे गौरव है ऐसे पुत्र पर। इस प्रकार पुत्र की प्रशंसा करता हुआ पिता ने पुत्र को हृदय से लगा लिया।

87. किरियं च रोयइ धीरो

थेर! एत्थ किं करेसि? पुट्ठं–नर-नाहेण! पंजलिउड-वुड्ढो तं अहिंवदिऊण साहेउं पउत्तो-णरिंद! एत्थ अम्बबीय ववणट्ठं मए खणिआ पुहवी। थेर! हवेज्जा तुह वयपरिणइ। कहमेअं करसि मुहा परिस्समं, ण भोतव्वं तुमए जहेच्छिअं फलं।

हसमाणो थेरो बोल्लइ–णिव! अहं णत्थि सत्थपरायणो। जणहियट्ठाए, परहियट्ठाए य करेमि परिस्समं। ण करिस्सं णवरं पुत्त-पोत्त-पपोत्ताइयपरिवारट्ठं। नूणं होयव्वा फलिभूआ मे आसावल्ली। णिवेण चिंतेउं लग्गो–अहो! केरिसं लोगुत्तमं सोअण्णं, केरिसो अणण्णोच्छाहो, अब्भुअ-सेवा पारायणया। पुरिस तुह धिई पसंसणिज्जा। परोवयारनिट्ठपुरिसा पाविऊण धरणी धण्णा जाया। परम-पसण्ण-णिवईए दिण्णं तस्स दीनारसहस्सं। पुरिस! इच्छियमणोरहं तुरियं पावेह।

87. धीर पुरुष आचरण पर बल देते हैं

हे वृद्ध पुरुष! यहां क्या कर रहा है? राजा ने पूछा। हाथ जोड़कर वृद्ध ने कहा–महाराज आम के बीज बोने के लिए जमीन खोद रहा हूं। वृद्ध पुरुष! तुम्हारी वय-परिणति हो गयी है। व्यर्थ परिश्रम किसलिए कर रहे हो। तुम इसके फल नहीं खा सकोगे। मुस्कराते हुए वृद्ध ने कहा–नरेन्द्र! मैं स्वार्थ परायण नहीं हूं। केवल पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि अपने निजी परिवार के लिए नहीं कर रहा हूं। निश्चय ही आशा बल्लरी फलित होगी। राजा ने चिन्तन किया, ओहो! कैसी है लोकोत्तम सौजन्यता, कैसा है अनन्य उत्साह और अद्‌भुत सेवा पारायणता। हे पुरुष! तुम्हारा धैर्य प्रशंसनीय हे। ऐसे परोपकार निष्ठ व्यक्ति को पाकर धरती धन्य हो गयी। राजा प्रसन्न होकर उसको एक हजार सुवर्ण मुद्रा दी। पुरुष! तुम अपने इच्छित मनोरथ शीघ्र ही प्राप्त करो।

88. अलं बालस्स संगेण

माहण! कक्खे किं? पुट्ठं वंचगेण।

भायर! अजो त्ति वज्जरइ माहणो।

पुरिस! भद्दोसि तुमं, सइं निहारसु गहिर-दिट्ठीए किं रक्खिओ कक्खे?

तुण्हिओ बंभणो सणिअं सणिअं पुरओ सरिओ। अग्गं चिट्ठइ वीइओ धुत्तो, सो बोल्लइ–माहण! किं कुक्कुरं विक्केअणट्ठं वच्चसि?

भायर! नेवं नेवं इमो साणो, पण्णवीस-रूप्पगमहामुल्लेण कीणीअ अजो।

माहण! पच्चक्खं किं पमाणं। उप्पिडिओ तुमं दिट्ठी-दोसेण।

तईअ वंचगो सप्पेमं माहणेण वाहरिउं पउत्तो–माहण! अज्ज पच्चूसे साणं नेऊण तुरियं-तुरियं कुत्थ गच्छसि? सव्वेसिं कहणेण सो विचिंतिओ जाओ। वियारइ–किं कायव्वं? कहं करेज्ज? उवणओ एत्थ सप्प-छुच्छुंदरियाए सरिसो। एगंतरे आगओ धुत्त सिरोमणी चउत्थो जणो। महुर सरस्सईए जंपीअ–माहण! मुंच, मुंच परिमुंच, मुहा कहं भारं वहसि? उज्जुहिअयेण माहणेण ण णायं वंचणरहस्सं, तक्कालं परिछूढो अजो।

णाणा-कुडिल-कला-कोविआ, हिअय-विहूणा चउरा जणा अजं गहिऊण सिग्घं धाविआ।

धुत्त-सेहराणं अलक्खणिज्जं महुर-भासणं तेसिं महुर-वागरणमवि विसमीसिअं। तेसिं आगिई वि कसायकलुसत्तणेण ण जाणिज्जइ। तेसिं मिलणं वि बहुदुहदायगं। तम्हा वट्टियव्वं सावहाणेण अणेग-धुत्त-सेहरा पइपयं वंचयंति अवरमाणवा।

88. अज्ञजनों की संगत से बचो

वंचग ने कहा–ब्राह्मण! तुम्हारी कांख में क्या है? ब्राह्मण ने कहा–भाई! मेरी कक्ष में बकरा है। ब्राह्मण! तुम भद्र हो, गहरी दृष्टि से देखो जरा क्या है? मौन होकर ब्राह्मण धीरे-धीरे आगे चल पड़ा। आगे मार्ग में दूसरा धूर्त बैठा था।

उसने पूछा–ब्राह्मण! इस कुत्ते को बेचने के लिए जा रहे हो क्या?

भाई! नहीं–नहीं यह कुत्ता नहीं है, इसको मैंने पच्चीस रुपये में खरीदा है, कुत्ता नहीं बकरा है।

ब्राह्मण! ''सामने में दिखाई पड़ने वाली वस्तु के लिए प्रमाण की क्या आवश्यकता?'' तुम दृष्टि दोष से पीड़ित हो।

तीसरा वंचक सप्रेम बोला–ब्राह्मण! आज प्रातःकाल में कुत्ते को लेकर जल्दी-जल्दी कहां जा रहे हो? एक, दो, तीन सबकी एक ही वाणी सुनकर वह चिंतित हो गया, क्या करना चाहिए? कैसे करे? यहां तो सांप छुछुन्दरी जैसा हो गया। इतने में धूर्त्त शिरोमणी चौथा व्यक्ति और आ गया। मधुर वाणी में बोला–ब्राह्मण! छोड़, छोड़, व्यर्थ ही क्यों भार ढो रहा है। तुम्हारे लिए यह कुत्ता किस काम का। ब्राह्मण प्रवंचना को समझ न सका और कुत्ता समझ बकरे को वहीं छोड़ दिया। कुटिल-कला-कोविद निर्दय चारों बकरे को उठाकर जल्दी दौड़ गये।

धूर्त्तों के शिरोमणी की वाणी पहचानी नहीं जा सकती। उनकी मीठी बोली विष मिश्रित होती है। उनकी कषाय-कलुषता से विकृत आकृति जानी नहीं जाती। उनका मिलन भी दुःखद होता है। इसलिए वंचकों से सावधान रहना चाहिए। धूर्त्त लोग पग-पग पर दूसरों को ठगना चाहते हैं।

89. जारिसी दिठ्ठी तारिसी सिठ्ठी

विअडवणे जत्थ तत्थ भममाणो खेयखिण्णो णरणाहो दुहिओ पिवासिओ य जाओ। संतत्तो णिवो मज्झण्हवेलाए आगमिओ उडजदुवारम्मि। वीसामस्स ठाणं पेक्खिअ किंचि कालं ठिओ। तहेव ठिओ एगो थेरो। तिसियत्तो णिवो आउलवाउलो जाओ। उडज-सामीए पिलीआइ जंतलट्ठीए बेचउराइं उच्छुइं। तक्कालं भरिअं पत्तं। सहिययत्तणेण वुड्ढो अतिहिसागयं करइ। महुर-रस-पाणेण लहइ णिवो तत्तिं। वित्थरियं खेत्तं पासिअ ईसिं हसिरेण गहिर विचारमग्गेण-णरणाहेण पडिसाहिअं-किसण! णयर-णाहं किं मुल्लं देइ?

अम्हकेरो महारायो बहु दयालू, किवालू, नेहालू य। चिंत्तेउमाढत्तो भूवईणिच्छियमेव अस्स अवसरस्स मएवि रज्ज-वुड्ढीए लाहो गहियव्वो चलंतो णरणाहो पुणरवि रसपाउं समुच्छुको जाओ।

झडित्ति किसणेण पीलिआइं बेचउराइं उच्छुइं रसजुत्ताइं परं ण भरिअं पत्तं।

अईव विम्हिओ चिंतिओ य जाओ, णरणाहो पुच्छेउं लग्गो-थविर! एवं कहं जाअं?

समयण्णू थेरो वज्जरिउं पउत्तो-अम्हाण णयर णिवस्स मणो भावणा विगलिया मणो दूसिओ य जाओ। जारिसी दिट्ठी तारिसी सिट्ठी होई।

भूवई वियारेइ-सच्चमिणं जे करेंति सुहकप्पणं तेसिं परिसप्पइ सव्वओ सुहमयं वायावरणं। महारायेण सीगरिआ अप्पखलणा। णाहं करेमि अग्गे एआरिसिं तुडिं। खलणं पई णिवो कुणइ बहु अणुतावं।

89. जैसी दृष्टि : वैसी सृष्टि

विकट वन में जहां-तहां घूमता हुआ राजा खेद-खिन्न दु:खित और प्यासयुक्त हो गया। संतप्त नृप मध्याह्न बेला में एक झोपड़ी के पास पहुंचा। विश्राम के लिए स्थान देखकर कुछ समय ठहर गया। वहीं एक बुड्ढा बैठा था। प्यास के कारण राजा व्याकुल हो रहा था। झोपड़ी के मालिक ने दो-चार ईख पीला। तत्काल प्याला भर गया। सहृदयता से वृद्ध पुरुष ने अतिथि का स्वागत किया। मधुर ईख का रस पीकर राजा तृप्त हो गया। विस्तृत खेत को देखकर गहरे विचारों में मग्न हो ईषत् हास्य के साथ राजा ने पूछा-किसान! नगर के राजा को क्या मूल्य देता है? भाई! हमारा नरनाथ बड़ा दयालु और कृपालु है। राजा ने चिन्तन किया कि निश्चित ही मुझे भी राज्यवृद्धि के लिए इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए। चलते हुए राजा ने रस पीने की इच्छा प्रकट की। किसान जल्दी उठकर रसयुक्त दो-चार इच्छु खंड को पीला, पर पात्र नहीं भरा। किसान अत्यन्त विस्मित व चिन्तित हो गया। राजा पूछने लगा-स्थविर। यह कैसे हो गया। समय को जानने वाला वृद्ध पुरुष बोला-हमारे नगर के नरनाथ की भावना भ्रष्ट हो गयी है। मन दूषित हो गया है। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि होती है। राजा ने विचारा, बात सत्य है। जैसे कोई मनुष्य सुख की कल्पना करता है तो उसके चारों ओर सुख का वातावरण बन जाता है। महाराजा ने अपनी भूल को स्वीकार किया। भविष्य में ऐसी त्रुटि नहीं होगी। ऐसा संकल्प किया। स्खलना के कारण अनुताप करने लगा।

90. इड्ढीए परिच्चायं

अम्म! पव्वइस्सामि अहं।

अजुत्तमिणं अजुत्तमिणं भणमाणी अम्मा सहसत्ति पुत्तस्स करपल्लवं घेत्तूण वज्जरइ–वच्छ! असमये गमणं णाणुत्तरं। चिंतणिज्जं किंचि। रायभवणम्मि ज्जेव तुए कायव्वा जोगसाहणा, विचित्ता जइणमुणीणं जीवणचरिया। तुज्झ सरीरो सुहोइओ सुउमालो य। जइ तक्काले उप्पज्जिस्सइ आयंको, तया किं करिस्ससि चिगिच्छं? अत्थि सामण्णमग्गो अचिगिच्छाए।

अम्मापियर! णिम्मम-णिस्संगनिरहंकारवित्तिजुत्ताइं मुणिणं सव्ववत्थुइं। तस्स सुहस्स दुहस्स का कप्पणा। मुणी जत्थ-कत्थवि ठिंतो जं किमवि सीउण्हं भुंजेंतो, उसिणं उदगं पिबेंतों, तत्तभूमीअले अणत्थअं सुवेंतो वि परममुइओ लक्खिज्जइ।

मायर! विहरंति अरण्णे मिय-पक्खिणो जइ हवेज्ज आयंको ता को करइ ओसहोवयारं, को कुणेइ तिगिच्छं, को पुच्छइ सुह-संवायं, को देइ भत्त-पाणं। जया जे हवइ निरामयो तया सुहपुव्वं विहरइ वणम्मि। गवेसइ सय भत्त-पाणं। तणं भक्खित्ता, जलं पीइत्ता, करइ सुहाणुभूइं। एवं मिगचरिया इव साहूणं चरिया। सव्वदुक्खविमोक्खणट्ठं मुणिचरियं चरिस्सामि। अणुजाणह अम्माताय।

एव्वं मायपियरेहि अणुण्णं गेण्हिऊण मियापुत्तो इड्ढिसिड्ढधणमित्त-णातीजणा एवं छडइ जह महाणायो कंचुअं।

90. ऋद्धि का परित्याग

मां! मैं प्रव्रजित होऊंगा। अयुक्त है अयुक्त ऐसा कहती हुई पुत्र का हाथ पकड़कर मां ने कहा–वत्स! असमय में तेरा गमन उचित नहीं होगा। थोड़ा चिन्तन करो। राजभवन में ही योग साधना करो। विचित्र है जैन मुनियों की जीवनचर्या। तेरा शरीर सुखोपभोग्य एवं सुकुमार है। तू नहीं जानता है साधना काल में अनेक कष्ट उत्पन्न होंगे। अगर शरीर में रोग पैदा हो गया तो कौन करेगा तेरी चिकित्सा? श्रामण्य का मार्ग अचिकित्सा का है।

हे माता पिता! मुनियों की सर्व वस्तु निर्मम, निसंग, निरभिमान की वृत्ति वाली होती है। उसके लिए सुख-दु:ख की क्या कल्पना। मुनि जहां कहीं बैठते, शीत उष्ण सहते हुए, गर्म उदग पीते हुए भी प्रमुदित रहता है। माता! अरण्य में मृग पक्षीगण के यदि रोग हो जावे तो कौन करेगा चिकित्सा? कौन करेगा औषधि उपचार? कौन पूछेगा सुख संवाद? कौन लाकर देगा भक्त पान। जो निरामय हो जाता है वह सुखपूर्वक जंगल में विचरण करता है। स्वयं दाने की गवेषणा करता है। तृण को खाकर, जल को पीकर, सुख का अनुभव करता है। इस प्रकार मुनि चरिया भी मृग चरिया की तरह होती है।

माता-पिता मैं सर्व दु:खों से मुक्त मुनि चरिया का पालन करूंगा। मुझे अविलम्ब आज्ञा दो। माता की अनुज्ञा लेकर मृगापुत्र रिधि-सिद्धि धन मित्र ज्ञातीजनों को इस प्रकार छोड़ दिया, जैसे सांप केंचुली को छोड़ देता है।

91. आणा गुरुणं अवियारणिज्जा

उवस्सयम्मि आगयं उरालं किण्हं सप्पं अकम्हा पासिऊण गुरुवरो तक्खणं सीसं बोलवइ। अंजलिबद्धसीसेण पुट्ठं–भंते! का आणा? को आएसो?

सीस! तुरसु सयराहमेव। लहसु साहल्लं। अही कियंतो दीहो ति करसु णिय हत्थेहिं पमाणं।

सविणय-सीसो गुरुण वयणपमाणं त्ति कहमाणो तुरियगइए तत्थेव गमिओ। बुद्धि-निहाण-सीसो तत्थ गंतूण चिट्ठइ। जया विसहरो तओ ठाणओ अग्गओ चलिओ तया तं ठाणं करेइ सुत्तेण पमाणं।

गुरु विचिंतइ–अलद्धो पडिआरो। णिसंदेहरूवेण भविस्सइ सीसो विसहर-विसेण णीरोओ। गच्छ सीस! तत्थेव, णिच्चिंतं णिब्भयं। अहीए दंतस्स गणणं कुण। मा करसु मणयमवि चिंतणं। गुरु सासणं अणुपालंत्तो सीसो झडित्ति दंत्त गणणट्ठं सप्पस्स मुहम्मि हत्थं पेसिओ। तक्कालं डसिओ नागो। सयराहमेव कया पुण्णरूवेण सुरक्खा गुरुणा। सव्वं दुक्खं समत्तं। णवजीवणपत्तो सीसो णिवडीअ गुरुण चलणेसु। कयण्णुआए विण्णत्तं–अहो! गुरुगरिमा अकहणिज्जा अवच्चा य। हवंति गुरुणो णिक्कारणमुवयारिणो। अत्थि गुरुवराणमवण्णणीआ सत्ती।

भंते! केण पच्चुवयारेण णेएमि अप्पाणं रिणमुत्तिं। भवयाणं आणा बहुलाहिरा होइ। हवेज्ज गुरुण आणा णिच्छियमेव सीस-हियट्ठं कल्लाणट्ठं च।

91. गुरु का आदेश अविचारणीय होता है

उपाश्रय में अकसमात् एक मोटा, काला सांप को देखकर गुरु ने तत्क्षण शिष्य को बुलाया। अंजलिबद्ध शिष्य ने पूछा–भंते! क्या आज्ञा? क्या आदेश? शिष्य! शीघ्र आओ और महान् सफलता को प्राप्त करो। यह सांप कितना लम्बा है अपने हाथों से इसका प्रमाण करो। शिष्य सविनय–ठीक है, कहकर वहां से उठकर तुरन्त गया। बुद्धि निधान शिष्य वहां जाकर बैठ गया। जब विषधर उस स्थान से चला तब शिष्य ने उस स्थान को रस्सी से माप लिया। गुरु ने चिन्तन किया, रोग का प्रतिकार नहीं हुआ। निसंदेह शिष्य का रोग विषधर के विष से शान्त होगा। दूसरी बार फिर शिष्य को आदेश दिया–शिष्य! निश्चिंत निर्भय होकर जाओ और सांप के दांतों की संख्या करके आओ। किंचित् भी चिन्ता मत करना। गुरु की आज्ञा का पालन करता हुआ शिष्य ने शीघ्र दांतों की संख्या करने के लिए सांप के मुंह में हाथ डाला, तत्काल नाग ने डंस लिया। शीघ्र ही गुरु ने शिष्य की सम्यक् सुरक्षा की। शिष्य का सारा दु:ख समाप्त हो गया। शिष्य ने नवजीवन प्राप्त किया। कृत्यज्ञता ज्ञापित करता हुआ शिष्य गुरु के चरणों में झुककर सविनय बोला–गुरु की गरिमा अकथनीय और अवाच्य है। गुरु निष्कारण ही परोपकार करते हैं। गुरु की शक्ति वर्णनातीत है। भंते! किस प्रत्युपकार से अपने आपको ऋण से मुक्त करूं। गुरु की आज्ञा निश्चय ही शिष्य के हित तथा कल्याण के लिए होती है।

92. विहारचरिया इसिणं पसत्था

एगासिअं धम्म-संघस्स सव्वे साहुणो मिलिऊण परुप्परं विंचिंतिरे–रसलुद्धो आयरियमंगू इओ गंतुं नेच्छइ। पडिभासइ अग्गे वि कयावि ण विहरेज्ज। पडिलाभेंति पडिदिअहं सावगाा सभत्तीमणुण-पायस-दहि-घय-गुड-मीसिअं पक्कन्नं, णाणा-रस-वंजणजुत्तं भत्त-पाणं य। भवइ आयरियो साउभोयणरओ, तम्हा बोहियव्वो, एवं विचिंतिऊण कत्तव्व-परायणसीसा उवट्ठिआ गुरु चरणकमलेसु। सविणय-सभत्तिं सूरिंदं वंदिऊण बद्ध पाणिपल्ला गंभीरसरेण साहेउं पउत्ता–भंते! अम्हे किर भवयाणं सीसा, अओ सीगारसु अम्हाणं पत्थणं।

भणसु सीसा! भणह अप्पणं मणोभावणं तुम्हे किं वांच्छह?

आयरियप्पवर! अइक्कंतो एगो संवच्छरो संपइ णयरत्तो विहरियव्वं। णो कप्पइ एत्थ वीअ वासावसणं सुत्त-मग्गाणुसारेण। सच्चमिणमागमुग्घोसणा ''विहारचरिया इसिणं पसत्था'' एक्कमेक्कठाणे वसणेण उपज्जंति बहु दोसा, तओ हवेज्ज वयाणं पीला। सामण्णम्मि संसओ जाअइ। णूणं ण हवेज्ज कम्हचिय सभला साहणा।

सुणह! वसंति एत्थ भत्तिपहाण-सावगा, करेंति पडिदिणं पडिपलं धम्मजागरणं, सुणेंति पावयणं, देंति अउलंदाणं।

भो आयरियवर! मा करणिज्जं सीमुल्लंघणं। णाणा-रस-वंजण-भोअणेण किं पयोजणं? ''साहणट्ठाए न तु जिहाए'' णियमाणुसारेण रुक्खं सुक्खं भक्खित्ता संजम-जत्ता सहला कायव्वा। सीसग्गहं गुरुणा ण सीगरिअं। अंते नायं सव्वेहिं सीसेहि गमणं ण इच्छइ आयरिओ। णत्थि एत्थवसणेण लाहो। छंडिअ रस-लोलुहं आयरिअं गआ सव्वेवि सीसा। आयरियमंगू तहेव ठिओ। सो तव-संजमम्मि सिड्ढिल्लिओ जाओ।

92. ऋषियों की प्रशस्त विहारचर्या

एक बार धर्मसंघ के सब साधु मिलकर परस्पर चिन्तन करने लगे। आचार्य मंगू रसलोलुप हो गये हैं। यहां से जाना नहीं चाहते हैं। ऐसा लगता है कि आगे भी कभी विहार नहीं करेंगे। श्रावक लोग प्रतिदिन सभक्ति मनोज्ञ दही, घृत, गुडमिश्रित पक्वान्न और नाना रस व्यंजन युक्त भक्तपान प्रतिलाभित करते हैं। आचार्य मंगू स्वादु भोजन रत हो गये हैं, अतः इनको जागरूक कर देना चाहिए। ऐसा चिन्तन कर कर्तव्य परायण शिष्य गुरु के चरणों में उपस्थित हुए। सविनय सभक्ति, आचार्य की वंदना कर हाथ जोड़ गंभीर स्वर से बोले–भंते! हम आपके शिष्य हैं, इसलिए हमारी प्रार्थना स्वीकार करो।

कहो शिष्य। कहो अपनी मनोभावना, तुम क्या चाहते हो? आचार्यप्रवर! यहां एक संवत्सर बीत गया। अब यहां से हमें विहार कर देना चाहिए। सूत्र मार्ग के अनुसार यहां दूसरा वर्षावास करना उचित नहीं है। आगमवाणी का घोष है–''ऋषियों की विहार चर्या प्रशस्त होनी चाहिए।'' मुनि को एक स्थान में रहने से बहुत दोष उत्पन्न होते हैं। उस कारण व्रतों का भंग हो जाता है। श्रामण्य धर्म में संशय पैदा हो सकता है, किसी भी प्रकार साधना सफल नहीं हो सकती।

गुरु–सुनो शिष्यो। यहां भक्ति प्रधान श्रावक रहते हैं, प्रतिदिन प्रतिपल धर्म जागरणा करते हैं। मुनियों के प्रवचन सुनते हैं। साधुओं को अतुल दान देते हैं। शिष्य–आचार्यप्रवर। सीमा का उल्लंघन मत करो। हमें नाना प्रकार के रसयुक्त आहार से क्या प्रयोजन? साधना के लिए खाते हैं न कि जीभ के स्वाद के लिये। नियमानुसार रुक्खा-सूखा खाकर संयम यात्रा सफल करनी चाहिए। शिष्यों के आग्रह को गुरु ने स्वीकार नहीं किया, अन्त में शिष्यों ने जान लिया कि आचार्य की जाने की इच्छा नहीं है, हमको यहां ठहरना लाभप्रद नहीं है। रसलोलुप आचार्य को छोड़कर सब शिष्य चले गये और आचार्य मंगू वहीं रहा। तप-संयम में शिथिल हो गया।

93. विवत्ति अविणीयस्स संपत्ति विणीयस्स य

सहयर! गमिओ अहुणा इमेण मग्गेण एगो कुंजरो–आइक्खइ अविणीओ सीसो।

सब्भावेण वज्जरिउं पउत्तो अण्णे विणीअसीसो-मित्तवर! नेवं-नेवं गयस्स चरण-विन्नासा। संति करिणीए पाया, अत्थि सा एगक्खिआ, तीए उवरिं ठिआ गुव्विणी महेसी।

एए ततो अग्गओ सरिआ। मग्गम्मि मिलिआ एगा सरसी। मणोहरं ठाणं नायं एए वीसामकरणट्ठं तहेव ठिया। एणंतरे आगमिआ तहेव एक्का थेरी, सा पलोएत्ता जोइसिअं सहरिस-हिअयेण ताण समीवमागमिआ, पुट्ठं तीए-विउसवरा! भणह णाणवलेण पुत्तेण सह किं सम्मिलणं होहिइ। एवं भणमाणीए थेरीए मुहागिई विगिआ जाआ। तक्कालं णिवडिओ तिस्सा मत्थअट्ठो घडो। अविणीओ सीसो सिग्घं बोल्लइ–अम्ब! मुओ तुह पुत्तो। विसढं अंतिमं सूअणं सुणिऊण थेरी कप्पंती रोत्तुमाढत्ता।

बीओ विणीओ सीसो भणइ–मा करसु मणयं वि चिंतणं। सव्व होहिइ अणुऊलं। पुत्तो मिलिस्सइ सयमागम्मिऊण तुह हरम्मि। संतरस-सोम्मं मुहमुद्दं णिहालंती थेरी उप्फुला संजाया। धावमाणी थेरी हम्मम्मि पवेसइ। अकम्हा आगमन्तं पुत्तं पासित्ता अइहरिसिआ सा। अधणस्स धणं विव गयक्खस्स लोयणं विव थेरी णियपुत्तं पाविऊण अच्चंतं सुहमणुहवइ। थेरी बंभणपुत्तं आयारिऊण सायरठावेइ समुण्णयासणम्मि। णाणालंकारेहिं वत्थेहिं य सा तं तोसीअ पोसीअ य।

उहओ माहण-पुत्ता उवट्ठिआ सिद्धपुरिस-चरण-कमलेसु। रोसेण धमधमंतो वियड-भिउडीजुत्तो भीसणवयणं बोल्लइ अविणीओ–इयंतं च्चिय णिरवेक्खो वि कहं विभेओ करीअ? एगो भवइ सिंधु बीओ बिंदू य। एव्वं भवयस्स ववहारं णोचियं। वच्छ! सुण–''विवत्ति अविणीयस्स संपत्ति विणीयस्स।''

अव्वो! अतुच्छो भेओ खु अविणीअ-विणीअजीवण-ववहारम्मि। एसो सीसो विणय-विवेग-लाघव-गुणेहिं संपण्णे णाणाविज्जा परिमंडिओ य। इंगियागारमाहेमाणो हुवीअ मे किवापत्तो। जे आयरियउवज्झायाणं सुस्सूसावयणं करेंति तेसिं जलसित्तपायवा विव णाण-विण्णाणाइं पइदिणं पवड्ढन्ति।

93. अविनीत को विपदा और विनीत को संपदा

इस प्रकार अविनीत शिष्य ने कहा–मित्र! इस मार्ग से अभी-अभी एक हाथी गया है। सद्भाव से दूसरा मित्र बोला–मित्रवर! नहीं-नहीं ये हाथी के चरण चिह्न नहीं हैं, ये तो हथिनी के पैर हैं और वह हथिनी एक आंख वाली है, उसके ऊपर राजा की गर्भवती रानी बैठी हुई है।

दोनों वहां से आगे चले। मार्ग में एक तालाब आया, मनोहर स्थान को देख विश्राम के लिए दोनों वहीं ठहर गये। इतने में वहां एक बुड्ढी आ गयी। ज्योतिषियों को देख हर्षित हृदय से बुड्ढी उनके समीप आकर बोली–विद्वत्वर! अपने ज्ञान बल से बतलाओ कि मेरे पुत्र से कब मिलन होगा? इस प्रकार बोलती हुई बुढ़िया की मुखाकृति विकृत हो गयी। उसके माथे पर रखा घड़ा गिर पड़ा। अविनीत शिष्य बोला–अम्ब! तेरा पुत्र मर गया है। भयंकर सूचना सुनकर वृद्धा कांपती हुई रोने लगी। दूसरे विनीत ब्राह्मण शिष्य ने कहा–माता! किंचित् भी चिन्ता मत करो। सब कुछ तेरे अनुकूल होगा, तेरा पुत्र घर स्वयं आकर मिलेगा। शान्तरस सौम्य मुखमुद्रा की ओर देखकर बुड्ढी पुलकित हो उठी। दौड़ती हुई अपने घर गयी। अकस्मात् अपने पुत्र को घर आते देख हर्षित हो गयी। निर्धन के धन एवं अन्धे के आंख के समान वृद्ध स्त्री अपने प्रिय पुत्र को प्राप्त कर खुशी से झूम उठी। वृद्धा ने उस ब्राह्मण को घर बुलाकर ऊंचे आसन पर बैठाया, वस्त्र अलंकार से सत्कार-सम्मान किया।

दोनों ब्राह्मण पुत्र गुरु के चरणों में उपस्थित हुए। क्रोधावेश में विकट भृकुटी चढ़ाकर अविनीत भीषण वचन से बोला–तुमने निरपेक्ष होकर इतना भेद क्यों रखा? एक को सिन्धु बनाया और एक को बिन्दु ही रखा। इस प्रकार का व्यवहार आपके लिए क्या उचित है? वत्स–सुनो। अविनीत के सदा विपत्ति और विनीत के सदा सम्पत्ति मिलती है। अरे! विनीत और अविनीत के जीवन व्यवहार में महान् अन्तर है। यह शिष्य विनय-विवेक और लघुता आदि गुणों से अलंकृत है, विविध विद्याओं से परिमण्डित है। इंगिताकार की आराधना करता हुआ मेरा कृपा पात्र बन गया। जो आचार्य एवं उपाध्यायों की सेवा-सुश्रूषा करता है। उसका ज्ञान-विज्ञान प्रतिदिन वैसे ही प्रवर्धमान रहता है जिस प्रकार जल में स्थित पादप सदा बढ़ता है।

94. सत्तीए चमक्कारो

इब्भस्स हम्मम्मि पविट्ठो मुणी महुयरियाए। उक्किट्ठ भावणाए पडिलाभेइ मुणिणं। पुट्ठं-गिहसामणीए मुणी! अज्ज का तिही संजाया?

तक्खणं साहेउं पउत्तो मुणी-वहिण्ण! अत्थि अज्ज पुण्णिमा।

मुणि! चिंतणिज्जं किंचि, णो कप्पइ साहुणं ओहारिणी भासा। विम्हरिअं तुए, अत्थि अज्ज अमावस्सा। करसु पायच्छितं।

मुणी भणइ–णिसम्म वहिण! मा करसु संसयं ण करेमि मिच्छा भासणं। मे कहणं ण होहिइ अण्णहा। गमिओ जहट्ठाणं, गुरु-चलणेसु ठिओ, कहिअं सव्वं वुत्तंतं। भवयं! मंततंतविज्जासु कोविओ अत्थि। महमहइ सव्वओ तुह महिमा। किवालू भवयं करसु किवा जं ण होउ मे मिच्छा भासणं साहुं-साहुं सीस! गमसु इब्भस्स घरम्मि कहसु वहिणिं पाससु अज्ज रयणीए आयासे चंदं।

आयरिओ अप्पविज्जा वलेण दरिसावेइ चंदं।

94. शक्ति का चमत्कार

एक सेठ के घर मुनि गोचरी के लिए गये। सेठानी ने मुनि को उत्कृष्ट भावों से प्रतिलाभित किया। गृहस्वामिनी ने मुनि से पूछा–मुनि आज क्या तिथि है? तत्क्षण मुनि ने कहा–बहिन! आज पूर्णिमा है, मुने! चिन्तनपूर्वक बोलो, साधु के लिए निश्चयकारी भाषा बोलना सदा वर्जनीय हे। तुम भूल गये हो आज अमावस्या होनी चाहिए। अकल्पनीय वाणी के लिए आपको प्रायश्चित करना होगा। मुनि–बहिन! मेरे कथन पर जरा भी संशय मत करो। मैंने झूठ नहीं कहा, मेरा कहना निश्चित ही अन्यथा नहीं होगा। साधु गोचरी लेकर यथास्थान आ गया। गुरु के चरणों में उपस्थित होकर गुरु के सम्मुख सारी घटना का जिक्र किया। आप मंत्र, तंत्र सब विद्याओं में पारंगत हैं, आपकी महिमा चारों ओर महक रही है। कृपालु भगवन्! मुझ पर कृपा करो, मेरा कथन मिथ्या नहीं होना चाहिए।

शिष्य! अच्छा बहुत अच्छा। तुम सेठ के घर जाकर कह दो। बहिन! रात्री में आकाश में चन्द्रमा देख लेना–आचार्य ने अपने विद्या बल से आकाश में पूर्णिमा की चन्द्रमा दिखला दी।

95. अप्पसुद्धिसाहणं धम्मो

अंजलिबद्ध-पंचभायरा भयवकिण्हचलणेसु पणमिआ, मउलिअपाणि-पल्लवा वोत्तुं पउत्ता-गंतुं समुच्छुआ अम्ह तित्थजत्ताए। इच्छेमो भवयाणं अणुण्णा। तुब्भाण आसीसेहिं हवेज्ज सव्वं भव्वं।

भगयकिण्हो मत्थयं करेण छीवंतो साहेउमाढत्तो तुब्भे सुहकज्जस्स समुच्छुआ अओ देमि सुहासीसं। पांडुसुआ! गिण्हसु तुंबगं करेज्ज अस्स सुरक्खा। जत्थ-तत्थ करावेंतु तुमं सिणाणं, तत्थेव होयव्वं अलाउस्स विगुणं सिणाणं। कम्हच्चिय ण करणं खलणं। पच्चावलणे णअह णीरं। ते उत्फुल्ला आसीसं नेउं निग्गआ तित्थजत्ताए। जत्थ ण्हाही सयं तत्थ तुबगं विउणं सिणाणं करावेइ। एवं सव्वेसिं तित्थजत्ता णिविग्घ-संपण्ण-करिअ समागया पहु-दुवारम्मि। कयं सविणयं अहिवंदणं। हरिणा कुसलं पुट्ठं। ओवयारियं वत्तं पच्छा, पांडुसुआ अणुरोहं काउं पउत्ता—महाणुभाव! गिण्हसु अप्पणं णिही। ससम्माणं समप्पिअं वासुदेवस्स हत्थम्मि। सिरिकिण्हेण आसायणट्ठं पाणीअं हत्थम्मि गहिअं। आसायं बहु कडुअं। तक्खणं णिक्खिवइ पाणीअं। पुट्ठं णरिंदेण—एवं कहंसायं? किं ण काविइओ सिणाणं किण्हेण पुच्छिअं। भणिअं पांडुपुत्तेण—णिसंदेहं भयवं? अणेगहुत्तं करावीअ सिणाणं। सयराहमेव करिअं तुंबगस्स लहु खंडं, दिण्णं सव्वाणं पसाय-रूवेण।

पुट्ठं महारायेण—भायर! केरिसं सायं?

ण रोअइ बहु कडुअं-भणिअं पांडुपुत्तेहिं।

बोहभासाए किण्हेण कहिअं—णिसम्म पांडुसुआ! अत्थि अणंतसुह सरूवो अत्ता। तं जाणणट्ठं पढमं जहत्थ-णाणं कायव्वं। णाण-विहूणा किरिया णिअ लक्खं भिंदेउं अक्खमा। जह—विगुणं तिगुणं सिणाणं करणे णावि ण विणट्ठो कडुरसो तह-अंतर-कसाय-कलुसं सिणाणेण कहं होइ

95. धर्म आत्म-शुद्धि का साधन है

नत-मस्तक अंजलिबद्ध पांचों पांडव श्री कृष्ण के चरणों में उपस्थित होकर प्रणाम किये और हाथ जोड़कर बोले—भगवन्! हम तीर्थयात्रा जाने के लिए तैयार हो रहे हैं, आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा है, आपकी आज्ञा से ही सब कुछ भव्य होगा। हरि ने उनके मस्तक पर हाथ रखते हुए कहा—तुम शुभकार्य के लिए उद्यत हुए हो, मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं।

पांडुसुत! मेरा भी एक कार्य करना, अपने साथ इस तुम्बी को भी यात्रा करवाना। इसे धरोहर के रूप में साथ ले जाओ—इसकी सुरक्षा रखना। जहां-जहां तुम स्नान करो वहां-वहां तुम्बी को भी दुगुणा स्नान करवाना। किसी प्रकार स्खलना मत करना। वापस आते समय तुम्बी में पानी भर के लाना। वे प्रफुल्लित होकर एवं आशीष लेकर वहां से तीर्थयात्रा के लिए निकले। जहां पर वे स्नान करते वहां तुम्बी को दुगुना स्नान कराते। सर्व तीर्थों की यात्रा निर्विघ्न परिसम्पन्न कर प्रभु के दरबार में उपस्थित हुए। सविनय प्रणाम किया। हरि ने कुशल क्षेम पूछा। औपचारिक वार्ता के बाद पांडुसुत ने अनुरोध किया। हे महानुभाव! संभालो अपनी निधि को। पांडवों ने तुम्बी को ससम्मान वासुदेव के हाथों में समर्पित की। श्री कृष्ण ने अस्वाद के लिए तुम्बी में से पानी हाथ में लेकर चखा। पानी का स्वाद बहुत कड़वा था। हरि ने तत्काल पानी को थूक दिया। श्री कृष्ण जी ने पूछा—पांडुसुत! पानी का स्वाद खारा क्यो? क्या इसे स्नान नहीं करवाया?

पांडुसुतों ने कहा—निःसंदेह भगवन्! जहां हमने एक बार वहां तुम्बी को दो बार स्नान करवाया और जहां हमने दो बार किया, वहां इसे चार बार करवाया। इस प्रकार इसे अनेक बार स्नान करवाया। श्री कृष्ण ने शीघ्र ही तुम्बी का एक छोटा-सा टुकड़ा तोड़कर सबको देते हुए कहा—यह तीर्थयात्रा का प्रसाद है, सबने मुंह में लिया। मुंह कड़वा हो गया। सबने थूक दिया।

महाराज ने पूछा—भाई! कैसा हे इसका स्वाद?

पांडुवों ने कहा—बहुत कड़वा है।

श्री कृष्ण ने बोध की भाषा में कहा—भाई हमारी आत्मा अनन्त सुखस्वरूप वाली है। इसे पहचानने के लिए पहले यथार्थ ज्ञान करना चाहिए। ज्ञान के बिना क्रिया निज लक्ष्य को भेदने में अक्षम है। जैसे दो,

परिसुद्धं? भव्वा! सइं अप्पुल्लं सुहलवं अणुहवंति ते अण्णे परिजहंति। एवं महापुरिसाणं महु-वयणं सोउण सव्वे पफुल्लिआ जाया, उब्बोहं पावीअ। भयवं! धण्णा जाया अम्हे जागरिओ माणसो वत्थविअं लहिऊण अप्पदरिसणं करेमो।

तीन, चार बार स्नान करने पर भी तुम्बी का कटु रस खत्म नहीं हो सका वैसे ही भीतर की कषाय-कलुषता स्नान करने से कैसे परिशुद्ध हो सकती है? हे भव्यों! जो एक बार आत्मा से उत्पन्न सुख का अनुभव कर लेते हैं वे अन्य (सभी सुखों) का परित्याग कर देते हैं। इस प्रकार महापुरुष के मधुर वचनों से उद्‌बोधन पा सभी प्रफुल्लित हुए। भगवन्! हम धन्य हो गए, हमारा अन्तर-मानस जाग गया। अब वास्तविकता को प्राप्त कर आत्मा का साक्षात्कार करेंगे।

96. सव्वं ण होइ

एगआ उडज-दुवारम्मि चिट्ठमाणो मूसगो कंप-कंपिओ लग्गो। पुट्ठं उडज सामीणा—मूसग! अज्ज एवं कहं भयभीओ भूओ? सामी! अत्थि एत्थ एगो विडालो, सो तिक्खदिट्ठीए मुहुं-मुहुं मं निरूवेइ। किवालुणा जोईसरेण दिण्णं आसिवयणं। वच्छ! 'मज्जारो भव।' कम्मि समयम्मि जोइंदेण भणियं-मज्जार! अहुणा केआरिसी ठिई तुमं?

सामी! एत्थ भमइ एक्को कुक्कुरो, सो मं भक्खणट्ठं पउत्तो। जोइप्पवरेण उत्तं—वच्छ! 'साणो भव' कालंतरे पुणरवि पुट्ठं—भणसु, अहुणा किमत्थि कोइ वाहा? सामी! किं साहेमि, इओ-तओ भमइ केसरी तेण मे हिअयो पीलिज्जइ, तणू कीसो संजाओ। वच्छ! तुममवि 'सिंहोभव।' एगआ बुभुक्खिओ सिंहो पेक्खइ वणम्मि भोयणं, परं अलद्धं। उवकंट्ठे चिट्ठइ जोइसरो। सो णिवडिओ जोइप्पवरोवरिं। सिग्घं होही जोइंदो सावहाणो। विज्जा—मंत-तंत-बलेण कयं पुणरवि सिंहं मूसगो। हीणपुण्ण! अत्थि तुमं अचंतं लज्जिरो, अज्ज केरिसो थूलवयो जाओ। कहं गव्विल्लो भविअ भमसि? केआरिसो रुक्खिमो होही, संपइ तुज्झं किमवि णाहं दाहिस्सं। तुमं सिणेहेण लालिओपालिओ। सव्वंगिअं सुहं च दिण्णं, लहुमवि महावित्थारं कयं, तयावि अंतिमे अईव तुच्छत्तणं हीण-ववहारं कओ। विवेग-विगल! ण वियारेइ अप्पणं हियाहियं।

महामुरुक्ख! गुरु दिट्ठी ण सरइ? कीस! तुमं एआरिसं धट्ठिमं कहं करीअ? अव्वो! जं जं मणुओ चिंतेइ तं तं सव्व सागारं ण होइ।

96. सब कुछ नहीं होता

एक बार झोंपड़ी के द्वार में बैठा हुआ एक चूहा कांप रहा था। झोंपड़ी के सामी ने पूछा—मूसक! आज कैसे भयभीत हो रहे हो! स्वामी! यहां पर एक बिलाव बैठा है। वह मुझे तीक्ष्ण दृष्टि से बार-बार देख रहा है। कृपालु योगी ने आशीर्वचन दिया—वत्स! मार्जार हो जाओ। कुछ समय पश्चात् फिर योगी ने पूछा—बिलाव! अब कैसी स्थिति है, स्वामी! यहां पर एक कुत्ता है, वह मुझे खाने के लिए प्रवृत्त है। योगी प्रवर ने कहा—वत्स! कुत्ता हो जाओ, कालान्तर में फिर पूछा—वत्स! अब तो कोई बाधा नहीं है? स्वामी! क्या कहूं, इधर-उधर सिंह घूम रहा है, उसके कारण मेरा हृदय पीड़ित हो रहा है और शरीर भी कृश हो रहा है। वत्स! तुम भी सिंह बन जाओ। एक बार भूखा सिंह जंगल में इधर-उधर देख रहा था, पर खाने को कुछ नहीं मिला। पास में बैठे योगी पर झपट पड़ा। योगी सावधान हो गया, विद्या-मंत्र के बल से पुनः सिंह से उसे चूहा बना दिया। योगी ने कहा—पुण्यहीन! तू अत्यन्त लज्जालु था। आज कैसे वाचाल हो गया? कैसे गर्वित होकर भ्रमित हो गया? कैसे रुक्ष हो गया? मैंने तेरा स्नेह से लालन-पालन किया। सर्वांगीण सुख दिया।लघु से महान् बना दिया। तब भी अन्त में ऐसा व्यवहार किया। विवेक विकल! अपना हिताहित नहीं विचारा। महामूर्ख! गुरु कृपा को याद नहीं किया। तुमने ऐसी धृष्टता कैसे की? आश्चर्य है, मनुष्य जो चिन्तन करता है, सब साकार नहीं होता।

97. पमाओ परम सत्तु

एगआ निद्धणो माहणो बहुदूराओ आगच्छिय जोईसरस्स ठाणम्मि करीअ सविणयं पत्थणं–जोइंद! देहि मं कोई सेट्ठवत्थुं। जोइंदेण उत्तं–कल्लं दाहिम। सो निरासो बंभणो गओ।

बीइअदीवसे उवट्ठिओ माहणो। सुप्पसण्णो जोईसरो दाहिअ पारसमणी तं। वच्चसु सिग्घं वच्च, लद्धं मणेच्छिअं लाहं, परं छम्मासं पच्छा पच्चावलियं अवस्सं। सो संतुट्ठो माहणो गओ घेत्तूण पारसमणिं। तं सुद्धवत्थे बंधिऊण रक्खीअ पेडगम्मि। याचिअं पुणो जोइस्सरेण भायर! अइक्कंतं छम्मासं। किंकायव्वमूढेण तेण भणिअं जोइप्पवर! असामइयं कहं याचेइ। अहुणच्चिअ ण निम्मिअं सुवण्णं। मुक्ख! जइ छमास-पेरंतं ण होउ सिरिमंतो ता अहुणा किं होयव्वं? वहंतबाहणीरो बंभणो–'अहमेवम्हि मंदभग्गो चुक्किओ महामुल्लावसरो' एवं भणंतो तुण्हिक्को ठिओ।

भविया! एयं दिट्ठंतं सुणित्ता सुहकज्ज करणे विलंबं मा कुणह। जं कज्जं कल्लं कायव्वं तं अज्ज एव करणिज्जं। जं अज्ज करणं तं सायंतणे कायव्वं। जं मज्झण्हे करणिअं तं अहुणच्चिय कायव्वं, अओ पमायं परिवज्जेह। पमाओ परमो सत्तु त्ति।

97. प्रमाद परम शत्रु है

एक बार एक निर्धन ब्राह्मण दूर से योगी के स्थान में आकर हाथ जोड़कर सविनय प्रार्थना की–हे योगी! मुझे कोई श्रेष्ठ वस्तु का दान दो। योगी बोला–ब्राह्मण कल दूंगा। ब्राह्मण निराश होकर लौट गया।

दूसरे दिन फिर ब्राह्मण उपस्थित हुआ। ब्राह्मण को देखकर योगी बहुत खुश होकर उसको पारसमणी दी और कहा–जाओ शीघ्र मन इच्छित लाभ को प्राप्त करो, पर एक शर्त है–छः मास पश्चात् इसे पुनः लौटाना होगा। वह संतुष्ट होकर, पारसमणी को लेकर अविलम्ब घर गया। शुद्ध वस्त्र में बांधकर एक पेटी में सुरक्षित रख दिया।

छः मास बीते, योगी ने वापिस मांगते हुए कहा–भाई! पारसमणी दो। किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर उसने कहा–योगी! असमय में कैसे मांग रहे हो? अभी तक तो सुवर्ण बनाया ही नहीं। मूर्ख! जब छः मास में श्रीमान् नहीं बन सका तो अब क्या बनेगा। आंखों से नीर गिरने लगा और बोला–मैं कितना मंद भाग्य वाला हूं। महामूल्य अवसर को चूक गया। इस प्रकार बोलता हुआ चुप हो गया।

भव्यजनों! इस दृष्टांत को सुनकर शुभ कार्य करने में विलम्ब नहीं करना चाहिए। जो आज ही करना है उसे सायं तक ही कर लेना चाहिए। जो मध्याह्न में करना, उसे तत्काल ही कर लेना चाहिए। अतः प्रमाद को छोड़ो। प्रमाद परम शत्रु है।

98. सच्चमेव सरणं

एगासिअं एगो माहणो गंगामहानईए ण्हाइत्ता पचवलिओ णियहरं। पहम्मि संमिलिओ एगो विउसो। तेण पुट्ठं–माहण! कक्खे किं अत्थि। बंभणेण उत्तं–भायर। अत्थि मम कक्खे पोत्थअं। पुणरपि कया जिण्णासा–जइ पोत्थयं ता कहं उदगं पडइ? ण णीरं कव्वस्स साररसं त्ति माहणेण जंपिअं।

माहण! लंगुलं सारिसं कहं पडिभासइ? ताडपत्तं लिहिअं ति।

चित्त–विचित्तं कहं?

गोडक्खरं, गोडलिवीए लिहिअं।

तया दुब्भिगंधं कहं?

होहिअ जया राम–रावणमज्झे जुज्झो हवइ रत्तधारा, तस्स गंधं वित्थरिअं। अंत्तिमं सूईअं माहणेण–पियसखे! पुणो–पुणो कहं पुच्छसि?

अत्थि मम कक्खे सचित्ता मच्छा। पुणो–पुणो माहणेण अलियजंपणेण वि समस्साए समाहाणं ण हुवीअ। अन्ते सो सच्चस्स सरणं ज्जेव गेण्हइ।

98. सत्य ही शरण है

एक बार ब्राह्मण गंगा नदी से स्नान करके अपने घर की ओर आ रहा था। रास्ते में एक विद्वान् मिला और उसने पूछा–ब्राह्मण कांख में क्या है? ब्राह्मण–मेरी कांख में पुस्तक है। विद्वान् ने कहा–अगर पुस्तक है तो जल कैसे गिर रहा है?

ब्राह्मण ने कहा–यह जल नहीं, काव्य का साररस है।

हे ब्राह्मण! यह पूंछ जैसा क्या लग रहा है?

ब्राह्मण–यह ताड़पत्र पर लिखित है।

विद्वान्–यह चित्रित एवं रंग-बिरंगी कैसे?

ब्राह्मण–गोडाक्षर और गौड़लिपि में लिखित है।

विद्वान्–फिर गन्ध क्यों आ रही है?

ब्राह्मण–जब राम और रावण का युद्ध हुआ था, तब रक्त की धारा बही थी, उसी की गंध है।

अन्त में ब्राह्मण ने कहा–प्रिय सखे! बार-बार क्यों पूछते हो? मेरी कांख में मछली है। ब्राह्मण को बार-बार झूठ बोलने पर भी कोई समाधान नही मिला। अन्त में सत्य की शरण लेनी पड़ी।

99. धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ

साहूतुकारामो खेत्तओ उच्छुखंडाइं घेत्तूण आगमिओ गेहे। मग्गम्मि जं जं मणुओ याचइ तं तं किवालू अप्पइ एक्केकं। अवसेसं एगं उच्छूखंडं गेण्हित्ता सो गेहं गमइ। गेहिणी एक्कं उच्छुलट्ठिं अवलोइत्ता रोसेण धमधमंती–विउडभिउडी–कक्कस–वयणतीरेहिं गरहंती जम्पइ। निंदणं कुणंती हिययं भिंदइ। तहवि रिउमण–तुकारामेण मणयं ण कयं विसायं। तुण्हिक्को ठिओ। किंचिकालं पच्छा ईसिं हसिऊण तुकारामो साहेउं पउत्तो–देवी! सच्चमिणं मे सुअं पढमं अब्भं अणइ पच्छा वरिसइ। गेहिणी लज्जिरा जाया हवइ लहुभूआ या। एव्वं परिलक्खइ जं जे जणा सुद्धमणा उउमणा य ताणं ज्जेव धम्मो चिट्ठइ।

99. धर्म : शुद्ध हृदय में रहता है

सन्त तुकाराम खेत से गन्ने लेकर अपने घर की ओर आ रहे थे। मार्ग में जिस किसी ने गन्ने मांगे कृपालु सन्त तुकाराम सबको देते गये। उनके पास शेष एक गन्ना बचा। गृहस्वामिनी ने एक गन्ने को देखकर रोष से कांपती हुई विकट भृकुटी एवं कर्कश वचन रूपी तीर से गर्हा करती हुई बोलने लगी, और निन्दा करती हुई हृदय को बींधने लगी। फिर भी ऋजुमना तुकाराम किंचित् भी खिन्न न हुए बल्कि चुप हो गये। कुछ समय पश्चात् थोड़ा मुस्कराते हुए बोले–देवी! मैंने जो सुना है वह सत्य है कि पहले बादल गरजते हैं फिर बरसते हैं। पत्नी लज्जित और लघुभूत हो गयी। इस प्रकार परिलक्षित होता है कि जो लोग शुद्ध एवं सरल मन वाले होते हैं, उन्हीं में धर्म स्थिर होता है।

100. को चेयणं आवरेइ?

अहेसि कस्समवि णयरम्मि सड्ढा-भत्तीपुण्णो एगो सेवगो। सो करेइ महप्पस्स सेवा सुस्सूसा। सेवाए अणुरंजिओ महप्पो तं सेवगं पारसमणिं देज्जमाणो साहेउं पउत्तो-वच्छ! लहसु जहेच्छिअं लाहं। अस्स फासेण लोहो हवइ सुवण्णं। महप्प! कहं होइ इमेण संसग्गेण कणयं? सयराहमेव झोलीआए मज्झे पवेसिअं णिअं हत्थं। णिग्गइअं बाहिरं संडासं। पारसमणीए फासेण संडासं चामियरं जाअं। सेवगो विम्हिओ जाओ। अव्वो! अचिंतणिज्जा महप्पणो सत्ती परं एवं कहं जायं हेमं?

महप्पणो भणइ–'पच्चक्खं किं पमाणं।'

सेवगेण पुट्ठं–आसि एगम्मि झोलीआए पारसमणी तह संडासं। तह णत्थि भूओ तवणियं ता अहुणा कहमेवं भवइ?

रे मुक्ख! ण मुणेसि जहत्थं वुत्तं। पटक्खेवेणं कहं होहिस्सं हेमं? एमेव कम्मावरणेण ण होइ चेयण्णं परिसुद्धं।

100. कौन चेतना को आवृत्त करता है?

किसी नगर में श्रद्धा-भक्ति से परिपूर्ण एक सेवक रहता था। वह महात्मा की सेवा-सुश्रूषा करता था। भक्त की सेवा से अनुरक्त महात्मा ने पारसमणी देते हुए कहा–वत्स! मन इच्छित लाभ प्राप्त करो। सेवक–इससे सोना कैसे बनेगा? शीघ्र ही महात्मा झोली में हाथ डालकर चीमटा निकालता है और उससे पारसमणी का स्पर्श करता है, चीमटा तुरन्त पारसमणी के संयोग से सोने का हो गया। सेवक मन-ही-मन सोचने लगा योगी की शक्ति अचिंत्य है। ऐसे कैसे सोना हो गया? महात्मा बोला–प्रत्यक्ष वस्तु के लिए प्रमाण की क्या आवश्यकता? सेवक–योगीराज! एक ही झोली में पारसमणी ओर चीमटा था फिर भी सोना नहीं हुआ? रे मूर्ख! समझा नहीं, वास्तविकता को। चिमटे को वस्त्र में लपेटकर रखा था तो सोना कैसे हो सकता। इसी प्रकार कर्मों के आवरण के कारण चेतना शुद्ध नहीं हो सकती।

101. को णिमज्जइ?

एगो विउसवरो गंगामहानईए बीय तीरं गंतुं समुच्छुको, ठिओ उडुव मज्झे। विउसवरेण कयं पण्हं–केवट्ट! भे अवत्था का जाया? केवट्टेण भणिअं पण्णासवारिसिअस्स मे अवत्था।

नाविअ! किं आंग्लभासं मुणसि? ण जाणेमि। तया तुब्भाणं पण्णवीसवारिसिआ मुहा वइक्कंता। णेवं कालं पच्छा पुण रवि पुट्ठं–किं विण्णाणविसयम्मि कुसलो? णेवं, णेवं अज्झयणकरणं दूरे, णामोवि ण सुअं। ता तुज्झ जीवणस्स अद्धभागं मोरउल्ला विगयं। पुणरवि पुच्छइ–भूगोल-खगोल-गणिअ-इहहास-सिद्धंतणायदरिसण-कव्वाइसु कया च्चिअ गई पगई? मल्लहेण कहिअं विउसवर! इयंतं नामं णेवं सुअं। ण गमिओ हं कया पाढसालाए। मे एगक्खरं ण पढिअं। णावासंचालनं ज्जेव जीवणस्स पमुहं कज्जं। अच्चंतदुक्खिओ विउसवरो साहेउं पउत्तो-दुहपुण्णे ण जं तुम्हाण जीवणस्स आहिक्कं भागं मुहा विणट्ठं।

एवं परुप्परं दोण्णि करेंति पण्हुत्तरं। एयंतरे गंगामहानईए आरद्धो पयंडमारूओ। विम्हिअ-नाविएण उत्तं-पंडिअ! सावहाणं होउ। तुमं तरणकलाविण्णाओ?

केवड! सव्वकलाकोविओ हं परं ण जाणेमि तरणकलं। संवइ नावाए सद्धिं तुममवि अदंसणं भविहिसि। विउसो कंपकंपिओ लग्गो, किं कायव्वविमुहोसंभूओ। विगप्पमाणो सोएमाणो, गुम्महिअयो, खेय खिन्नो य जाओ।

केवडेण भणिअं–विउस! निग्गच्छइ मए हत्थेहिं इयाणिं नावा। तिब्बवाउए होस्सइ इमस्स सयखंडं। अत्थि सव्वकलाएण निउणो, पर तरणविज्जं विणा सो मच्चुं पत्तो। तरण कला कुसलो मल्लहो गमीअ गंगामहानईए पारं।

जह-तरणकलाभावेण विउसो निमज्जिओ गंगाए सोयम्मि। तरणकला विणा सव्वेकला णिप्फला जाओ। एवं सव्वकलाए पारंगआ माणवा वि धम्मकला विहूणा निमज्जंति संसार-अंबुहीए।

101. कौन डूबता है?

एक विद्वान् गंगा नदी के उस पार जाने को नौका में बैठा। विद्वान् ने केवट से प्रश्न किया–नाविक! आपकी क्या उम्र है?

मल्लाह ने कहा–मेरी पचास वर्ष की आयु है।

नाविक! क्या तुमने इंगलिश पढ़ी है?

नहीं जी नहीं इंगलिश नहीं जानता।

तब तो तुम्हारे पच्चीस वर्ष व्यर्थ ही चले गये। थोड़े समय पश्चात् फिर पूछा–क्या विज्ञान के विषय में कुछ जानते हो? नाविक–अध्ययन करना तो दूर रहा, इसका नाम भी कभी नहीं सुना है। तब तो तुम्हारे जीवन का अर्द्ध भाग व्यर्थ हो गया।

तीसरी बार फिर पूछा–नाविक! भूगोल, खगोल, गणित, इतिहास, सिद्धान्त, न्याय, दर्शन, काव्यादि में गति-प्रगति की है? मल्लाह ने कहा–विद्वान्! नहीं, मैंने इनके आज तक नाम भी नहीं सुने और न पाठशाला में भी गया। मेरे जीवन का प्रमुख कार्य है–नौका चलाना। विद्वान् ने अत्यन्त दु:ख के साथ कहा–तुम्हारे जीवन का अधिकांश भाग व्यर्थ चला गया।

इस प्रकार दोनों परस्पर प्रश्नोत्तर कर रहे थे कि इतने में गंगा महानदी में तूफान आया। विस्मित नाविक बोला–पंडित! सावधान हो जाओ, तूफान जोर से आ रहा है। महाशय! क्या आप तैरना जानते हो। केवट! मैं सब कलाओं में पारंगत हूं, पर तैरना नहीं जानता। तो महोदय! अब आपको नौका के साथ ही डूबना पड़ेगा। विद्वान् प्रकंपित होकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। दु:खी होकर संकल्पों-विकल्पों में डूब गया।

केवट ने कहा–पंडित! अब मेरे हाथों से नौका निकल रही है। और इसका खण्ड-खण्ड हो जाएगा। पंडित सब कलाओं में निपुण था पर तैरने की विद्या के अभाव में मृत्यु के मुंह में जा गिरा। तैरने की कला में कुशल मल्लाह गंगा नदी से पार हो गया।

जिस प्रकार तैरने की कला के अभाव में विद्वान् की सब कलाएं निष्फल हो गयीं और वह गंगा के स्रोत में बह गया। वैसे ही धर्मकला से अज्ञात मनुष्य संसार में डूब जाता है।

102. किमुक्किट्ठं जणणीजणयाइ रित्तं

किमुक्किट्ठं जणणीजणयाइरित्तं एगासिअं गिरीसो णियपुत्ता कुमारविणायगा बोल्लाविअ एवं कहइ–पुत्त! जो वसुहाए तिहुत्तं परिक्कमिस्सइ सो एव होस्सइ विजयी। खंदो चिंतइ–अत्थि मे वाहणो पण्णयरिऊ तेण सिग्घं करिस्सामि संसारस्स जत्ता। गणेसस्स हिययो पीलियो। असमंजसं दसं च पत्तो। मे सरीरो थूलो, वाहणमवि मूसगो। किं करणिज्जं? एवं विआरइ। खणमेत्तमेव उत्पन्नं समाहाणं। एत्थ किमुक्किट्ठं जणणी जणयाइरित्तं। तेहिं आणा-चरणेसु च णिवसित्था सव्वसंसारो। मोरउल्ला परिब्भमणेण किं लाहं? विणयेण विवेगेण चाउज्जेण दक्खयाए य कया महेसरस्स परिक्कमणं। तिक्खुत्तो पयाहिणं जणयं वंदित्ता तत्थेव निच्चलं ठिओ रइअपल्हत्थिओ।

कुमारो उक्कड-आंणदेण संसारस्स जत्ता काऊण उवट्ठिओ जणयस्स चलणेसु।

सिवेण उच्चरिअं–सुअ! लहिअं पारितोसं लम्बोदरेण। छम्मुहो कोहकासाइओ वोत्तुं पउत्तो–ताय! अक्खमो मे भायरो गमणं तया कहं भवइ विजयो, कयमजुत्तं, एत्थ पच्चक्खं पक्खवाओ। ण उइयं एआरिसं ववहारं। कयं सयं पयडं सव्वं रहस्सं संभूनाहो।

102. माता-पिता से उत्कृष्ट क्या?

एक बार महादेवजी ने अपने दोनों पुत्रों कुमार और विनायक को बुलाकर कहा–बेटे जो पहले पृथ्वी की तीन बार परिक्रमा कर देगा वह विजयी होगा। कार्तिकेय ने सोचा मेरा वाहन है–गरुड़। उसके द्वारा शीघ्र ही संसार यात्रा कर सकूंगा। गणेश जी का हृदय पीड़ित हुआ और असमंजस में पड़ गये। मेरा शरीर स्थूल है और वाहन भी चूहा है, क्या करना चाहिए। चिन्तन चला, क्षणमात्र में समाधाान मिल गया। माता-पिता के अतिरिक्त यहां और क्या उत्कृष्ट हो सकता है, उनकी आज्ञा एवं चरणों में सम्पूर्ण संसार निवास करता है।

व्यर्थ ही परिभ्रमण से क्या लाभ? विनय-विवेक और दक्षतापूर्वक महादेव और पार्वती की तीन बार प्रदक्षिणा देकर, नमस्कार कर, पालथी मारकर वहीं चरणों में बैठ गये। इधर कार्तिक उत्कृष्ट आनंद के साथ सम्पूर्ण विश्व की यात्रा कर पिता के चरणों में उपस्थित हुआ। शिव ने कहा–सुत! पारितोषित लम्बोदर ले गया। छंमुह (कार्तिकेय) क्रोध कषाय से लाल नेत्र कर बोला–तात! मेरा भाई स्थूल शरीर वाला है। चलने में असक्षम है, फिर कैसे यात्रा कर आया। आपने प्रत्यक्ष ही पक्षपात की है, जो किया वह अनुचित है। शंभूनाथ ने फिर कार्तिक को सार रहस्य समझाया।

103. धम्मं विणा णिप्फलं मणुयजम्मो

आंजनेय! किं गवेससि?

मायर! ढंढुल्लेमि रामं।

वायुपुत्त! किं हारिम्मि णिवसइ रामो?

जणणी! जइ णत्थि रामो ता मज्झ कए ण इमस्स कोवि महत्तं। ईसिं हसमाणी महासई सिया एवं साहइ–पवनसुअ! किं विज्जइ तुज्झ हिअयम्मि रामो?

अम्ब! एत्थ किं संदेहो? णिवसइ मए अणु-अणुम्मि रामो। एवं साहमाणो भत्त-महावीरो तक्कालं उग्घाडेइ णिय-हिअयं पच्चक्खं रामसिय-जुयलं पासित्ता सिया विम्हिआ जाआ। सच्चमिणं आकड्ढइ भयवं भत्तो भत्तीए। भत्तहणुमाण! भगवया रामेण सह तुम्ह णामंकिअं अमरं होइ।

जह लग्गइ आंजणेस्स रामणामं विणा संसारस्स सव्वेवि वत्थुविसेसा अप्पिया णिप्फला य, तह धम्माभावेण मणुज-जम्मो णिप्फलं होइ।

103. धर्म के बिना मनुष्य जन्म निष्फल है

अंजनापुत्र! क्या खाज रहा है?

माता! राम को ढूंढ़ रहा हूं।

वायुपुत्र! क्या इस हार में राम मिलेगा?

जननी! अगर राम नहीं है तो मेरे लिए इस हार का कोई महत्त्व नहीं है। मधुर मुस्कान बिखेरती हुई सीता ने इस प्रकार कहा–पवनसुत! क्या तेरे हृदय में राम है? अम्ब! इसमें क्या संदेह है? मेरे अणु-अणु में राम बसा हुआ है। इस प्रकार कहता हुआ भक्त हनुमान ने तत्काल अपने हृदय-कमल को फाड़ डाला। प्रत्यक्ष ही राम-सीता की जोड़ी के दर्शन हुए। सीता विस्मित हुई और कहने लगी यह सत्य है, भक्त अपनी भक्ति से भगवान् को भी आकर्षित कर लेता है। भक्त हनुमान! भगवान् राम के साथ तेरा नाम सदा अमर रहेगा।

जिस प्रकार कपिपुत्र हनुमान के लिए राम के नाम के अभाव में संसार की समस्त वस्तुएं अप्रिय और निष्फल हैं, वैसे ही धर्म के अभाव में मनुष्य का जन्म निष्फल होता है।

104. सच्चमेव जअइ

कम्मि वि णयरे हरिचंदो णाणचंदो य सेट्ठिप्पवरा पडिवसंति। एगआ हरिचंदस्स पुत्तस्स आरद्धो विवाहमहूसवो। तेण याचिआ मोत्तिअ-माला णाणचंदाओ। णाणालंकारेहिं परिमंडिओ पुत्तो। विवाहकज्जं समत्तं, गया सव्वे वि संबंधिजणा। पंच-छ-दिणाइं पच्छा समागओ णाणचंदो हरिचंद्स्स गेहे। सागयं सागयं साहेंतो सम्मुहमागओ सबाहुक्खेव-मिलेंतो हरिचंदो सप्पेमं कुसलं च पुच्छेउं पउत्तो, परं अंतक्करणो कलुसिओ जाओ। णाणचंदो मोत्तिअमालं मग्गणं पउत्तो। भायर! देसु मए मोत्तिअ-मालं। धणलोलुवो सो सयं सच्चवाइअं देक्खावेंतो ललियाए गिराए वोत्तुमारद्धो—बंधुप्पवर! विम्हिओसि तुमं। सुमणे वि एआरिसी घडणा ण घडिया। अवराणं वत्थुणमवहरणं दीहदोसावहं। अज्जप्पभिइ ण मए कस्सइ अदिण्णादाणं गहिअ। पुव्वमेव णिक्खेवं ण रक्खणिज्जं त्ति मए तुह हारं ण गहिअं मुहा अब्भक्खाणं किं देसि।

णाणचंदो जंपइ—भायर! एवं परावत्तणकरणं ण समुचिअं। तुम्हकेरस्स ण सोहइ एसा पणाली। अणग्गलवित्तिओ अवहरणम वि ण सीगारइ। गुरुवराहं करिअ वि ण लज्जइ। एवं परोप्परं विवायंता दोण्णि वि रायंतियमुवगच्छिंसु। णिवेइओ धणहरणस्स सव्व वुत्तंतो। णाणचंदो सिरं, उरं य कुट्टंतो, पिट्टंतो बोल्लइ—नरणाह! भंजसु विवायं। राइणा पुट्ठं—अत्थि को वि पमाणं? णत्थि अम्हाणं का वि सक्खी। पभणिअं णरणाहेण—अत्थि णयरिए बाहिं एगं देवी-मंदिरं, कल्लं तीए सम्मुहे होयव्वं नायं। पडहं दवाविअं। पासिउं उवट्ठिआ बहुजणा। तत्थत्थि एगो उरालो रुक्खो संजायो तम्मि रुक्खम्मि एगो कोडरो। तदब्भंतरे पट्ठाविओ एगो पुरिसो हरिचंदेण।

सव्व समक्खं पुच्छइ नरवरिंदो—भो देवीमायर! केण अवहरियं मालं। सच्चं-सच्चं भणसु। तदब्भंतराओ झुणी विणिग्गआ—णूणं अत्थि अवराही णाणचंदो। विम्हिआ पउरजणा भणेंति अहो। भगवइ केरिसी अजुत्तं अजुत्तं ति। केवि निंदंति देविं, केवि निंदंति हरिचंदं, केवि भणंति कयमजुत्तं णाणचंदेण, एवं दुव्विणियंति। णाणचंदो वियारइ अत्थि खलु रुक्खमज्झम्मि कोइ पुरिसो, एस पडिभासइ। परिक्खा काउं समुच्छुको णाणचंदो। णरवरिंदेण दिण्णा आणा।

104. जीत सत्य की होती है

किसी नगर में हरिचन्द और ज्ञानचन्द नाम के दो सेठ रहते थे। हरिचन्द के पुत्र का विवाह महोत्सव प्रारम्भ हुआ। हरिचन्द ने सेठ ज्ञानचन्द से मोतियों का हार मांगा।

नाना विभूषणों से पुत्र परिमंडित हुआ।

विवाह कार्य सम्पन्न हो चुका था सारे सगे-संबंधी अपने-अपने घर चले गये। पांच-छः दिन के पश्चात् ज्ञानचन्द हरिश्चन्द के घर आया। स्वागत करता हुआ हरिश्चन्द उसके सामने आया। दोनों परस्पर बांहों से मिले। हरिश्चन्द ने स्नपेम कुशल पूछा, लेकिन उसका दिल काला था।ज्ञानचन्द ने कहा—भाई! मेरा मोतियों का हार दे दो, विवाह हो चुका है। धन का लोलुप हरिचन्द अपने आपको सत्यवादी साबित करता हुआ मधुर वाणी में बोला—बंधुवर! तुम भूल गये हो। सपने में भी ऐसी घटना नहीं घटी। दूसरों की वस्तु का हरण करना महादोष है, आज तक मैंने किसी का बिना दिया धन ग्रहण नहीं किया। व्यर्थ ही दोष लगा रहे हो? ज्ञानचन्द ने कहा—भाई! इस प्रकार नकारना उचित नहीं है। यह प्रणाली तेरे लिए शोभनीय नहीं है। अनर्गल वृत्ति वाला तू दूसरों के धन को अपहरण करके स्वीकार नहीं करता। इतना बड़ा अपराध करके भी तू लज्जित नहीं होता। इस प्रकार परस्पर विवाद करते-करते दोनों ही राजा के पास पहुंचे। राजा को धन हरण का सारा वृत्तांत निवेदन किया। ज्ञानचन्द छाती-माथा कूटता-पीटता हुआ बोला—हे नरनाथ! हमारे विवाद को दूर करो। राजा ने कहा—है कोई तेरे पास ऐसा प्रमाण जिससे सत्य सिद्ध हो जाये। ज्ञानचन्द बोला—महाराज! मेरे पास न कोई प्रमाण है ओर न ही कोई साक्षी। राजा ने कहा—नगर के बाहर एक देवी का मन्दिर है, कल उसके सामने तुम्हारा न्याय होगा। चारों ओर सूचना करवा दी।देखने के लिए हजारों-हजारों लोग उपस्थित हो गये। मन्दिर के पास एक विशाल वृक्ष था। वृक्ष में एक कोटर था। उसके अन्दर एक आदमी को हरिश्चन्द ने बैठा दिया।

राजा ने सबके सामने देवी से पूछा—देवी माता! किसने माला का अपहरण किया है? सत्य प्रकट करो। अन्दर से आवाज आयी—हे राजा! निःसंदेह हरिश्चन्द निष्कलंक है। इस प्रकार देवी की वाणी से नगर की

सयराहमेव रुक्खस्स सव्वओ तणाइं भरिऊण पज्जालेइ अग्गिं। धूमाउलस्स तस्स अवरुद्धो सासो, सो पुक्कारइ–मओ त्ति एवं च बोल्लंतो, विलवंतो अंतराओ बाहिरं विनिग्गओ। पयडिकयं गुत्त रहस्सं इब्भेण। जुत्तिजुत्तं जोयणाए णयरलोआ उप्फुल्ला संजाआ, भणंति सव्वे नरनारिणो–छि छि कहं गव्विलो हविअ भमइ, अओ मिच्छाहंकारं मा कायव्वं।

णिच्छियमेव ण होइ कयावि सच्चमसच्चं, असच्चंसच्चं य। सच्चमेव जअइ त्ति भणमाणा जणा पडिगया णिअं णिअं ठाणं।

जनता विस्मित हो गयी। कोई कहता है यह सब अनुपयुक्त है। कोई देवी की वाणी की निंदा करता है, कोई हरिचन्द को झूठा बतला रहा है और कोई ज्ञानचन्द को। ज्ञानचन्द ने चिंतन किया निश्चित ही इस वृक्ष के कोटर में कोई पुरुष छिपा हुआ होना चाहिए। परीक्षा करने के लिए ज्ञानचन्द ने राजा से आज्ञा प्राप्त की। शीघ्र ही वृक्ष के चारों ओर घास भरकर आग प्रज्वलित कर दी। धूआं के कारण पुरुष का सांस घुटने लगा, जोर से पुकारने लगा, मैं मरा, मैं मरा, इस प्रकार उत्तप्त होकर रोता हुआ बाहर निकला, गुप्त रहस्य प्रकट हो गया। ज्ञानचन्द ने रहस्य प्रकट कर दिया।

युक्ति युक्त योजना से जनता प्रफुल्लित हो गयी। सभी एक ही स्वर में कहने लगे धिक्कार है धिक्कार है ऐसी प्रवंचना को। आहा! हरिचन्द अभिमान में चूर होकर फिर रहा था। अतः मिथ्या अहंकार नहीं करना चाहिए। निश्चित है असत्य कभी सत्य नहीं हो सकता और सत्य कभी असत्य नहीं हो सकता। इस प्रकार कहती हुई जनता अपने स्थान पर चली गयी।

105. बुद्धीए सिज्झंति कज्जाणि

एगासिअं गमिओ किसगो सुसरालयम्मि। जामायगमणेण सासससुरा बहु पप्फुल्लिआ। तेहिं कयं तस्स सागयं। साउभोयणं करावीअ। भत्तुत्तरे कुसुम-विलेवण-तंबोलाइएहिं समाणिओ। तओ गयो खेत्ते सुहणिविट्ठो उडजम्मि। भक्खिओ गुडं पिविओ इक्खुलट्ठीए रसं। इक्खुलट्दी अइसरस महुरा य अच्छरिज्जण सह आणंदजुत्तो जाओ। उल्लसिओ रोमकूवो। उच्छुबीअं गेण्हित्त सहरिसहिअयेण पडिगयो णिअहरं। तयकालं निमंतिओ सयण-सग्गा संबंधा। तेसिं सम्मुहे नियाहिप्पायं पयडंतो जंपिउं पउत्तो, बंधुप्पवर! वज्जरी उक्खाडिय, वोयइ इक्खुलट्ठीए बीअं। होस्सइ अचिंतं लाहं। भक्खणट्ठं महुर-गुडो पीवणट्ठं रसं य। इमस्साइरित्तं अम्हाणं अन्नं किं होयव्वं?

भायरा भणेंति—महामुक्खोसि तुमं अणागय-सुहस्स विणस्सइ वट्टममाणं? किमेयं उचियं त्ति? अकरणीअं कज्जं ण कायव्वं। बुद्धीअ कज्जाणि सिज्झंति। एआरिसं कज्जं करेज्ज, जेण ण पच्छातावो हवेज्ज। सछंदो एकल्लो णिअहत्थेहिं अपरिपक्कखेत्तं विकट्टइ, उप्पालेइ य। सयण-वग्गा पडिवोहेंति मुंच-मुंच अण्णाणग्हं। अवबुज्झे सइ परं ण मन्नइ किसओ। पक्खिवेइ इक्खुलट्ठी-बीअं खेतम्मि। उत्तो, सीत्तो य परं णीराभावेण णो एगमविबीअं परिप्फुडियं अपरिपक्कबुद्धीए हवंति ईइसाहु परिणामा। सो अंसुजलाउललोयणो जाओ, मंदभग्गो किसगो रुदंतो झिंकंतो कुणइ बहु अणुतावं।

105. कार्य बुद्धि से सिद्ध होते हैं

एक बार एक किसान अपने ससुराल गया। दामाद के आगमन पर सास-ससुर बहुत खुश हुए। अच्छा स्वागत किया और स्वादिष्ट भेजन करवाया। भोजन के पश्चात् कुसुम, विलेपन, तांबुल आदि से सम्मानित हुआ। ससुर के साथ किसान खेत में चला गया, सुखपूर्वक झोपड़ी में बैठा। ससुर ने दामाद को ईक्षुरस पिलाया और मधुर गुड़ खिलाया। ईक्षुदंड अत्यंत सरस और मधुर था। किसान साश्चर्य आनन्द को प्राप्त हुआ। उसका मन उल्लसित हो गया। ईक्षु के बीज लेकर सहृदय अपेन घर आ गया। तत्काल अपेन सगे-सम्बन्धियों को आमंत्रित किया। अपने अभिप्राय को प्रकट करते हुए कहा—बंधुवर! बाजरे को उखाड़कर ईख के बीज बोना चाहिए। हमें अचिंत्य लाभ होगा, खाने के लिए गुड़ और पीने के लिए ईक्षु रस मिलेगा। इसके अतिरिक्त और क्या चाहिए हमे। परिवार वाले बोले तू अनागत सुख से लिए वर्तमान को नष्ट करता है। अकरणीय कार्य को नहीं करना चाहिए। बुद्धि से कार्य सिद्ध होते हैं। ऐसा कार्य करो जिससे कभी पश्चात्ताप करना न पड़े। स्वच्छन्द अकेला किसान अपने हाथों से अपरिपक्व खेत को काट डाला और उखाड़ डाला। स्वजन-वर्ग ने प्रतिबोध देते हुए कहा—बेटे! छोड़, छोड़, अज्ञान आग्रह को छोड़, इसमें कोई भलाई नहीं है। समझाने पर भी नहीं समझा। खेत में ईख के बीज डाल दिये। पानी के अभाव में एक भी बीज प्रस्फुटित नही हो पाया। अपरिपक्व बुद्धि के कारण ऐसे परिणाम होते हं। आंसुओं से भरे नेत्र मंद भाग्य किसान रोता हुआ, झींकता हुआ बहुत अनुताप करता रहा।

106. कुम्मव्व अलीा पलीण गुत्तो

एगआ वणम्मि दुवे कुम्मगा इओ-तओ परिभमेंति। तयाणंतरे दुवे पावसियालया आहारं गवेसमाणा तहेव उपगच्छीअ, दूरत्तो ते कुम्मा ता पासंति। ते पासमाणा भिआ उव्विग्गा य जाया। तक्खणं अप्पणं हत्थ-पायगीवा य सणियं सणियं साहरंति, साहरित्ता निच्चला, णिप्फंदा, तुण्हिआ य जाया। ते पावसिआलया कुम्मगाणं उवगच्छंति। ते कुम्मगाणं इओ-तओ नहेहिं आलुंपंति, दंतेहिं अक्खोडेंति, घट्टेंति, फंदेंति, खोभेंति दोच्चं, तेच्चंपि पप्फोडेंति तया वि ण भूआ किंचि वि सहला। ते सियालगा सणियं-सणियं पच्छन्ना ठिआ। दूरगया त्ति जाणित्ता एगो कुम्मगो अप्पाणं शरीरं पसारियं एगं पावं, वीयं हत्थं बाहिरं णिसारेइ थोवं गीवं णीणेइ। एणंतरे दोवि सियालगा तुरियं उवगच्छीअ। कुम्मगस्स हत्थं पावं गीवं य फाडित्ता तं जीवरहिंय कारित्ता मंसं रत्तं य आहारेंति।

तओ पच्छा जत्थ वीओ कुम्मगो तत्थेव दोण्हि उवगच्छीअ तं कुम्मगमवि दोच्चंपि तेच्चंपि उक्खाडेइ, पक्खाडेइ, नोच्चइ, कयं सव्वं पयार पयत्तं परं णत्थि जाआ सहला। ते संता तंता परितंता निविण्णा य पडिगया। एवं जाणित्ता बीओ कुम्मगो सणिअं सणियं गीवं णिणेइ। उक्किट्ठगईए सकुसलो णिय-ठाणं परिगओ।

एवमेव जो समणो वा समणिओ व जेसिं पंच इंदियाइं गुत्ताइं भवंति कुम्मोव्व पावंति निव्वुइं सुहं य। अवरे जे ण हवंति राग-दोस-इंदियविसएसु गोवियमणा ते संसारसायरे निमज्जंति।

106. कूर्म की तरह संलीन बनो

एक बार वन में दो कछुवा इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे। इतने में दो पापी सियार आहर की गवेषणा करते हुए वहीं पर आ गये। दूर से कछुवों ने देखा, देखकर वे दोनों भयभीत और उद्विग्न हो गये। तत्काल हाथ-पांव और ग्रीवा अन्दर डाल लिया। निश्चल मौन होकर बैठ गये। वे दोनों सियार उन कछुवों के पास ओय, दोनों को इधर-उधर पटका, पछाड़ा दांतों से, नाखून से दबोचा। दो-तीन बार पटका, फिर भी सफल नहीं हुए। वे सियार छिप गए। जब सियारों को दूर गये जानकर एक कछुवे ने धीरे-धीरे अपने शरीर को बाहर निकाला, पहले पैरों फिर हाथों को इस प्रकार पूरे शरीर को ढाल से बाहर निकाल लिया। इतने में दोनों सीयार शीघ्र दौड़कर आ गये। उस कछुवे के हाथों को, पांवों को, गर्दन को दांतों से, नाखूनों से नोचकर खा गये। उसको जीव रहित कर दिया। मांस, खून को पी गये।

फिर जहां दूसरा कुर्म था वहां आये। उसे भी दो बार, तीन बार उठाया, पटका। सब प्रकार से प्रयतन किया पर सफल नहीं हुए। वे संतप्त, परिसंतप्त होकर वापस चले गये। कछुवे ने जान लिया कि खूब दूर चले गये तब धीरे-धीरे अपनी गर्दन को निकाला। शीघ्र गति से अपने स्थान पर चला गया।

इस प्रकार जो साधु-साध्वियां पंच इन्द्रिय को गोपन कर रखते हैं, वे उस कछुवे की भांति सुखपूर्वक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे और जो दूसरे कछुवे की तरह राग-द्वेषवश इन्द्रिय-विषयों में रहते हैं वे संसार सागर में डूब जाते हैं।

107. सम्मं चित्तं होयव्वं

एगया रांका बांका दोण्डि दंवई जणा बहिं गच्छंति। अग्गओ बांकासाहो गच्छंतो रूप्पगाणं रासिं दट्ठूणं वियारेइ रांका पच्छा आगच्छइ। सा इयं रासिं पासिऊण तं गहणट्ठं अहिलसिस्सइ अओ इमं रासिं धूलीए आविअं करेमि। एवं विचिंतिऊण सो णियपायेहिं धूलिं पक्खिवेइ। एणंतरे सा इत्थी वि तत्थ समागया। एवं किरिया करंतेण भत्तुणा सा पुच्छेइ–सामि! धूलीपक्खेवणेण किं ढक्केसि?

रांका–सुहगे! मग्गम्मि पडियं धण्णढेरं तं विलोइत्ता तुमं मोहपुण्णा होइ तेण मए धूलीए पायेहिं ढक्कियं। रांका सगव्वेण साहेइ–सामि! धूलीए उवरिं धूलीपक्खेवणेण किं? अवरं अदत्तं गहणं ण वांच्छेमि। रांका! ममत्तो वि तुज्झ अहिक्कं वेरग्गं। सभावेण इत्थी अहिममत्तभावजुत्ता होइ। धण्णोसि तुमं। एआरिसेहिं नारीहिं इहहासं उज्जागरेइ।

आवराणं धण्णविसए इच्छणं ण कायव्वं। पुग्गलवत्थुसु सम्मचित्तं होयव्वं।

107. चित्त को समत्व में प्रतिष्ठित करो

एक बार रांको और बांका दम्पत्ति कहीं बाहर जा रहे थे। रास्ते में बांकासाह को रुपयो का ढेर सा दिखाई दिया, सोचने लगा रांका पीछे आ रही है। इस राशि को देखकर उसका मन ललचा जाएगा। अतः इस राशि को धूल में आवृत्त कर दूं। इस प्रकार सोचकर उस धनराशि पर पैरों से धूलि डाल रहा था। इतने में वहां रांका भी पहुंच गयी। पूछा–धूलि से क्या ढक रहे हो?

सुभगे! मार्ग में मैंने धन के ढेर को देखा। मैंने सोचा–तेरा मोह जागृत हो जाएगा, क्योंकि धन को देख किसका मन नहीं ललचाता। रांका सगर्व बोली–स्वामी! धूल ऊपर धूल ढकने का क्या मतलब? रांका दूसरों की अदत्त ग्रहण की कभी इच्छा नहीं करती।

रांका! तू तो मेरे से भी अधिक वैराग्यवान् हो। स्वभाव से स्त्री का ममत्वभाव ज्यादा होता है! धन्य हो तुम। ऐसी नारियों से ही इतिहास उजागर होता है। दूसरों के धन की मन से इच्छा नहीं करना चाहिए। पौद्गलिक वस्तुओं में समचित रहना चाहिए।

108. सहावपरिवट्टणं कुणह

अन्नया एगो वायसो सत्तरगईए उडंतो गच्छइ, मज्झे पहम्मि संमिलिआ परहूत्ता। तीए पुट्ठं–काक! एआरिसी तुरिय गमणं किं? तुरिअं-तुरिअं कुत्थ गच्छसि? कोयल! वच्चेमि अहं बहु दूरपयेसे, जत्थ णिवसंति सोअण्ण-उत्तमा रिउमणा य णरा। एत्थ करेंति बाल-वुड्ढा-इत्थि-पुरिसेहिं सव्वेहिं अवमाणणं अवहीरिअं य।

भायर! तत्थेव गमणेण किं? किं लद्धं समाहाणं तहेवगमणेण? जत्थ-तत्थ गमसु, परं सहावं परिवट्टणं कायव्वं। विवरीअ-पएसे गमणं ण सोहापयं। एत्तो सविणय महकहणं जं इह च्चिअ णिवससु। ठाणं परिवत्तंतेण ण लहसु सुहाणुभूई। अप्पाणं रुक्खं सहावं परिवट्टसु ण च ठाणं। वसुहेवकुडुंबं त्ति भावंतो सुहपुव्वं विहरउ।

108. स्वभाव में परिवर्तन करो

एक समय एक काक शीघ्र तेज गति से उड़ता हुआ जा रहा था। मार्ग में कोयल मिल गयी, उसने पूछा–हे काक! आज चलने में इतनी जल्दी क्यों है? इतने शीघ्र कहां जा रहे हो? कोयल! बहुत दूर प्रदेश में जा रहा हूं जहां सौजन्य युक्त ऋजुमना उत्तम लोग बसते हैं। यहां के लोग, बाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सब ही मेरी अवमानना करते हैं।

भाई काक! वहां पर जाने से क्या लाभ? क्या वहां जाने से समाधान मिल जाएगा? जहां कहीं भी जावो पर स्वभाव का परिवर्तन करना होगा। विपरीत देश में जाना लाभदायक नहीं होता। मेरा सविनय कहना है कि यहां पर ही रहो। स्थान के परिवर्तन से सुख की अनुभूति नहीं होती। अपने रुक्ष स्वभाव का परिवर्तन करो न कि स्थान का। ''सम्पूर्ण वसुधा के लोग परिवार हैं'' इस सूत्र को याद करते हुए सुखपूर्वक विचरण करो।

109. का सिक्खा मुक्खपुरिसाण?

भो वाणर! हत्थपायाइसंजुत्तं तुमं देहं, तया तुह गायं कहं सीयेण पकंप्पिअं? मोरउल्ला कहं पावइ संकिलेसं? करसु थोवं परिस्समं, गिहस्स णिम्माणं कुण। तया सुहं सुहेण वससु। अहवा वणप्पएसु गुहा-गिरी-कंदरेसु वा णिवसेज्ज। वाणर! अहुणा वि आआसो मेहसच्छन्नो दीसइ। उट्ठसु होयव्वं अणलसेणं। णिच्छियमेव 'पमाओ परमो सत्तु' त्ति। पेक्ख! चंचुमेत्तेण आणीएहिं तणेहिं मए नीडो निम्मिओ। णिवसेमि अहं एत्थ सुहं सुहेण। एवं सुणित्ता मक्कडो गाढयर-रोसिओ जाओ। अलं-अलं तुह सिक्खावयणं, सूईमुहा गच्छेज्ज एयत्तो ण रोयइ तुमं उवएसं। संति सव्वेवि मे अंगोवंगाइं परं किं कायव्वं किं ण कायव्वं अहं वियारेमि, तुमं का चिंता? एवं आसुरत्तो वाणरो कओ सूईमुहाए नीडं परिभंगो।

जह सप्पस्स दुद्धपाणेण विसं परिवड्ढइ तह मुरुक्खाणं सदोवएसणेण संकिलेसो वड्ढइ। अओ मुक्खपुरिसाणं सिक्खा ण कायव्वा कयाइ वि।

109. मूर्खों को कैसी शिक्षा?

बन्दर! हाथ-पांव संयुक्त तेरा शरीर है फिर भी तेरा शरीर सर्दी से क्यों कांप रहा है? व्यर्थ ही क्यों संक्लेश को प्राप्त हो रहा है? थोड़ा-सा परिश्रम कर घर का निर्माण करो फिर अपने घर में सुखपूर्वक निवास करो अथवा वन प्रदेश या गुफाओ में निवास करो। बन्दर! अब भी आकाश मेघाच्छन्न दिखाई पड़ रहा है। उठो आलस्य को दूर करो, निश्चित ही प्रमाद व्यक्ति का परम शत्रु है। जरा मेरी ओर दृष्टि करो मात्र चूंच से तृण लाकर मैंने नीड निर्मित किया है। यहां मैं सुखपूर्वक निवास कर रही हूं। इस प्रकार वैया की शिक्षा सुनकर बन्दर रोष से भर गया। बस कर, शिक्षा-वचन मैं सुनना नहीं चाहता, चली जाओ यहां से। तुम्हारा उपदेश मुझे रुचिकर नहीं लगता। मेरे सब अंगोपांग हैं पर क्या करना, क्या नहीं करना, यह तो मैं स्वयं चिंतन करूंगा, तुमको क्या चिंता? क्रुद्ध बंदर ने बैया का नीडम तोड़ डाला।

जिस प्रकार सांप को दूध पिलाने से विष की वृद्धि होती है, उसी प्रकार मूर्ख मनुष्यों को सदुपदेश देने से संक्लेश बढ़ता है, इसलिए अज्ञानी व्यक्तियों को शिक्षा कभी नहीं देनी चाहिए।

110. मा पुणो चुकिज्जइ

समोइण्णा आयरियप्पवरा कुंभारस्स चित्तसलाए। कणिट्टो मुणी ठिओ सज्झायणट्ठं वाहिं। तत्थेव संति कुंभारस्स णविणकुंभाइं। चवलचित्तो सीसो पक्खेवेई लहु पासाण-खंडं, तेण टूट्टिओ एगो कुंभो। झडित्ति उट्ठिओ कलालो पभणेइ-किमिणं? किमिणं? मुणिणा उत्तं—इच्छामि दुक्कडं। किंचि पच्छा पुणरवि एवं चिअ फोडिओ वीइओ कुंभो। आसुरत्तो कुंहारो साहइ—मुहुं-मुहुं कहणेणावि ण होइओ लज्जिरो।

साहू वोत्तुं पउत्तो—इच्छामि दुक्कडं। खमेह अवराहं मे, तुडी जाओ। तओ एवं हु तइअमवि कुंभं विणट्ठं। एवं तिहुत्तं एक्कमेक्कं विणासइ तिण्णि कुंभाणि। कलालो कंपिआरो जाओ। कोह-कासाइअनेत्तेहिं जंपेउमाढत्तो—हे धिट्ठ! ण जागरेइ तुज्झ चेयणा? किमेयं साहणाकाले एवं अवराहं करणं उइयं? खिप्पमेव रुट्ठो कुंहारो मुणिस्स कण्णम्मि लहु पासाण खंडं पक्खित्था। साहू जंपइ—कलाल! मुंच-मुंच कण्णं। कुंहारो बोल्लइ इच्छामि दुक्कडं। समणो विलवंतो अक्कंदेइ। एत्थंत्तरे को वि अवरो पुरिसो तत्थ समागच्छीअ। सो तीए घडणाए पुच्छीअ। वयस्स! किं कारणेण आउलवाउलो सि? सयलं वुत्तंतं निवेइत्था कलालो। कहइ—खरतुल्लो धट्ठो मुणी पुणो-पुणो करेइ खलणं, मिच्छामि दुक्कडं बोल्लिऊण सव्व पावाणं पाअच्छितं करइ णवरं विडंबणं मेत्तमेआरिसो धम्मो।

जो पुणो-पुणो चुकिज्जइ सो पमाअं ण णिवरइ, सो ज्जेव खु पइ-पयं विसायं पावइ।

110. अवसर को मत खोओ

आचार्यप्रवर कुंभकार की चित्रशाला में पधारे। बाल मुनि स्वाध्याय के लिए बाहर बैठे। वहां पर कुंभकार के नये घड़े पड़े थे। चंचल चित्त वाले लघु मुनि ने एक छोटा-सा पत्थर का टुकड़ा फेंका, जिसके कारण एक घड़ा टूट गया। तत्काल कुम्हार उठा और बोला—यह क्या? मुनि! यह क्या? मुनि जोर से बोले—क्षमा मांगता हूं। थोड़े समय के बाद फिर भी इसी प्रकार कंकड़ फेंका, दूसरा घड़ा टूट गया। क्रुद्ध कुम्हार बोला—हे मुनि! बार-बार कहने पर भी लज्जित नहीं होता। साधु बोला—कुंभकार! मेरी त्रुटि हो गयी, मेरे अपराध को क्षमा करें। थोड़ी देर बाद फिर एक घड़ा फोड़ डाला। इस प्रकार एक-एक करके तीन घड़े तोड़ डाले। कुम्हार कुपित होकर उठा, कषाय नेत्रों से बोला—हे धृष्ट! अब तक तेरी चेतना नहीं जगी? क्या साधनाकाल में इस प्रकार अपराध करना उचित है? कुम्हार ने शीघ्र ही मुनि के कान में एक लघु पत्थर का टुकड़ा जोर से दबोचा। साधु ने कहा—कलाल! छोड़-छोड़ मेरे कान को। कुम्हार बोला—इच्छामि दुक्कडं। साधु रोदन करता हुआ जोर से आक्रंदन करने लगा। इतने में अन्य पुरुष वहां पर आ गया। उसने घटना का कारण पूछा—मित्र! तुम इतने आकुल-व्याकुल क्यों हो रहे हो? कुम्हार ने सारा वृत्तांत कह सुनाया। खर तुल्य धृष्ट यह मुनि बार-बार स्खलना करता है और मिच्छामि दुक्कडं बोलकर पापों का प्रायश्चित्त कर लेता है।

वह धर्म केवल विडम्बना मात्र है। जो बार-बार चुक करता है, प्रमाद को नहीं छोड़ता, वह प्रति-पग विषाद को प्राप्त होता है।

111. कहं भविस्सइ अत्तसोही?

एगया णयरम्मि इब्भस्स हरम्मि पुत्तोच्छवो हवइ। तेण सेट्ठिणा दिण्णाइ बे-बे मोदयाइं पइहरम्मि। एगो वणिओ चिंतेइ—अज्जं ण भक्खेमि, कल्लं खाइस्सं, भायणमज्झे ठविओ। बीयदिवसे मज्झकाले भिक्खं गवेसमाणो समणवरो तस्स वणियस्स गेहम्मि समागओ। तवस्सिं मुणिवरं दट्ठूण सो परमपसण्णो जाओ। सभत्ति-विणय-कयं पत्थणाएहि, एहि मुणि! अज्ज वरिसिओ दुद्धमेहो। ममं सोहग्गं जं रिसिवरा समागआ मए गिहे। किं देमि मुणिवरं? किं अप्पिज्जं! दोण्ह वि मोदया मुणिवरं अप्पिआ विसुद्धभावेण। मोयणं घेत्तूण तत्तो परिगयो। सो सेट्ठी वि बहिमागओ।

एणंतरे पाडिवेसिओ पुच्छइ—सेट्ठ! कल्लं लक्खमोल्लं सुरहिगंधसंजुत्तं मोदयं संपप्पं, किं तुमं खाइयो? सो भणइ—मुणिणं दिण्णं। अरे मुरुक्खोसि तुमं, ण मुणेसि पियमप्पिअं, ण जाणेसि किं भक्खं किमभक्खं। सेट्ठ! थोवं खंडं अवस्सं चक्खियव्वं।एवं मोयणस्स वण्णणं सोऊण वणिओ अइविम्हयचिंत्तो—आह हे भायर! एरिसं लक्खमोल्लं लड्डू रसजुत्तो। तस्स मोयगस्स साउं अणुधाविओ उच्चसरेण पुकारेइ—चिट्ठ-चिट्ठ मुणिवर! मए पिय मोयणं पच्चप्पिज्जउ। तया समणेण साहिअं—भत्त! मा हारसु दाणमहाफलं। साहुणं पत्तम्मि अप्पियं वत्थु ण पुणो गेण्हिज्जं। पुणो-पुणो मुणी तं पडिबोहइ परं ण मन्नेइ सो ण अवबुज्झिओ। झोलिगामज्झाओ एगं लड्डू निक्कासिओ। मुणि! एक्कं तुमट्ठं। एगं अहं भक्खेमि। सो गच्छमाणो विचिंतेइ—मोयगं सड्रसगंधसंजुत्तं। गयो णियं ठाणं। सो मरिऊण भवइ मम्मणसेट्ठी सुपत्तदाणेण लद्धं बहु धणं परन्तु मोयगं पुणग्गहणेण ता बंधं हवइ भोगांतरायस्स, चिक्कण कम्मं निबंधइ। तेण कारणेण भक्खण्ट्ठं एगं रोट्टगं, एगं दालं, खाएइ अन्न वत्थु खाइउं असमत्थो जाओ।

एगासिअं णयरीए आयरियप्पवरा समोसरिआ, पणमित्ता मम्मणो पुच्छइ—भयवं! साहेसु पुव्वजम्मेहं को आसि? मए एरिसं किं पाव होहिअं? जं विवागकडुयं हुवीअ? पुव्वभवस्स सव्वावत्ता मुणित्ता परिकहिओ—गुरुवरा! इमस्स पावस्स किं पायच्छित्तं होज्ज? आयरियप्पवरेण कहियं जं विणयबहुमाणभत्तीए वेयावच्चं कुण सुहभावणाए सह दाणं करेह, अओ तुज्झ अप्पसुही होइ।

111. कैसे होगी आत्मशुद्धि?

एक शहर में सेठ के घर पुत्र का पुत्रोत्सव मनाया जा रहा था। उस सेठ ने शहर के प्रत्येक घर में दो-दो केसरिये मोदक दिये। एक बनिक् ने सोचा कि इन मोदकों को आज नहीं खाऊंगा, कल खाऊंगा। बर्तन में रख दिये। दूसरे दिन भिक्षा के लिए उस बनिक् के घर मुनि आये। तपस्वी मुनि को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। सभक्ति सविनय प्रार्थना की—आओ, आओ मुनिवर! आज मेरे घर पर दूध की वर्षा हुई है। मेरे घर पर ऋषिवर पधारे। यह मेरा सौभाग्य है। मुनिवर को क्या दूं? क्या अर्पित करूं? दो लड्डू को विशुद्ध भावों से अर्पित किया। मुनि लड्डुओं को लेकर चले गये। वह सेठ बाहर आया, इतने में पड़ोसी पूछने लगा, सेठ! कल लाखमूल्य वाले सुगंधयुक्त लड्डू आये थे। क्या तुम खा लिये? सेठ ने कहा—मैंने मुनि को दे दिये। अरे सेठ जी तुम तो मूर्ख हो। तुम प्रिय अप्रिय को नहीं समझते। नहीं जानते हो क्या खाना चाहिए, क्या नहीं खाना चाहिए। सेठ! आपको थोड़ा-सा चखना चाहिए। इस प्रकार मोदक के वर्णन सुनकर बनिया अतिविस्मित हुआ। हे भ्रात! ऐसे थे लाखमूल्य वाले लड्डू, रसयुक्त। मोदक के स्वाद के लिए मुनि के पीछे दौड़ता हुआ ऊंचे स्वर से बोला—मुनिवर! ठहरो, ठहरो, मेरे प्रिय मोदक को वापस दो। तब साधु बोला—भक्त! दान के महान् फल को मत हार। साधु के पात्र में देने के बाद वापस नहीं लेते। बार-बार मुनिवर प्रतिबोध देते हैं। फिर भी वह नहीं माना, नहीं समझा। झोली से एक लड्डू को निकाल लिया। मुनि! एक तुम्हारे लिए और एक मैं खा लूंगा। वह बनिया चिन्तन करता हुआ कि—मोदक षड्रस गंध युक्त है—अपने स्थान पर पहुंचा। वह मरकर मम्मनसेठ बना। सुपात्र दान देने से बहुत धन मिला, किन्तु लड्डू वापस लेने से भोगान्तराय का बंध हो गया। चिक्कने कर्म बंध गये। उस कारण खाने में एक रोटी एक दाल का प्रयोग कर सकता। शेष सब वस्तुएं खाने में और पचाने में असमर्थ था।

एक बार नगर में आचार्य पधारे। वह भी वहां गया और बन्दन कर मम्मन पूछने लगा—भंते! मेरा पूर्वजन्म बताने की कृपा करें। मैं कौन था? मैंने ऐसे क्या पाप कर्म किये थे, जिसका विपाक बहुत कटुक है। पूर्व जन्म की सारी घटना आचार्य द्वारा सुनी। आचार्यवर! इस पाप का क्या प्रायश्चित्त होगा? आचार्य ने कहा—भद्र! पंचमहाव्रत साधु का विनय बहुमान भक्ति वैयावृत्त्य कर और शुभ भावनाओं से दान दो। इससे तेरी आत्मशुद्धि होगी।

112. दिढधम्मिणी सावगा

एगया अम्बडपरिव्वाओ जिणेसर सिरमहावीर चलण-कमलेसु पणमित्ता वंदित्ता एवं वयासि-भंते! अहुणा गच्छामि अहं रायगिहं। भगवयामहावीरेण वुत्तं-अम्बड! अत्थि तहेव सुलसासाविगा, सा दिढधम्मिणी, सड्ढासीला य। अम्बडो तहत्ति कहिऊण परिगओ। अम्बडो विचिंतेइ-दिढधम्मिणी सुलसा केआरिसी परिक्खा कायव्वा।सो एवं चिंतिऊण विउव्वणालद्धीए बम्हारूवं धरिऊण चउम्मुहिं झूणि। कुणंतो पुव्वदिसाभागे संठिओ। लोगमुहाओ वित्थरइ पउत्ति-अज्ज पुरबाहिरं सक्खं बम्हा समागओ, केई जणा भत्तीए, केइ नरा कोउगलिआ दट्ठुं एवं बहवे लोगा तहेव समागओ। परं धम्मसद्धालु सुलसा तहिं ण गमित्था। अंबडो बीयदिवसे दाहिणदिसाए गरुलासणे पीयंबरं सक्खं विण्हुरूवं विहेऊणं पुराओ बाहिरं चिट्ठइ। तयावि तहिं सुलसा ण गच्छित्था। एवं तइयंमि दिणे पच्छिमदिसाभागे उसहवाहणं महेसरूवं विहेऊण बाहिरं चिट्ठीअ। समागआ दंसणट्ठं पउराजणा, तयावि विसुद्धधम्माणुरत्ता सुलसा मणसा वि दंसणं ण वांच्छइ। अंबडो सोइ-दंसणहेऊ सव्वेवि पुरजणा आगया परं सुलसा णागया।

चउत्थदिणंमि उत्तरदिसाए समोसरणम्मि समोसरियो सक्खं जिणरूवम्मि, वंदणत्थं बहवे लोगा आगया, परं सुलसा अज्ज वि ण आगच्छिसु। अंबडो महावीररूवम्मि सुलसाघरम्मि गयो, अंबडो बयासी सुलसे। मए दंसणट्ठं किं ण आएसी?

सुलसा-भवं णत्थि महावीरो इमम्मि कालम्मि पंचवीसमो जिणेंदो कयावि ण संभवेज्जा तम्हा होसि को वि कवडो पुरिसो जणाणं वंचसि।तया अंबडो अक्खेइ-सुहगे! अलं अलं तुमं जं वुत्तं कहेसि तं सच्चं। मायापवंचं संहरित्ता निय-मूलरूवं पयडियो। सुलसे! वीरसामी सयंमुहेण करेइ, तुह पसंसणं। महासइ! तुमं एगा दिढधम्मिणी साविगा। सुलसा धम्मभायरो त्ति जाणित्ता कयं सागयं, पुच्छइं महावीरस्स सुहं संवायं।

सड्ढाणिठ्ठासुलसा तित्थयरनामगोत्तकम्मबंधणं उवज्जावेइं इहच्चिय भरहखेत्तम्मि आगामिचउवीसीए निम्मो णाम-पन्नरसमो तित्थंयरो भविस्सइ। एवं जो मणुजो सुलसा इव णियवयरक्खणट्ठं निच्चलचित्तो सम्मत्तंमि दिढो होइ ता तित्थयरनामगोत्तं निबंधइ।

112. दृढ धर्मिणी श्राविका

एक बार अम्बड परिव्राजक जिनेश्वर श्री महावीर के चरणों में प्रणाम एवं वन्दना करके कहने लगा-भन्ते! मैं अभी राजगृह जाता हूं। भगवान् ने कहा-अम्बड! वहां पर सुलसा श्राविका है। वह दृढ़धर्मिणी, श्रद्धाशीला है। अम्बड ने 'ठीक है', कहकर चला गया। अम्बड चिंतन करने लगा-सुलसा की परीक्षा करनी चाहिए, कैसी दृढ़धर्मिणी है? वह विकुर्वणा लब्धि से ब्रह्म का रूप बनाकर चारों दिशाओं में ध्वनि करता हुआ पूर्व दिशा में बैठ गया। पुरजनों के मुंह से प्रवृत्ति फैल गयी कि आज शहर के बाहर साक्षात् ब्रह्मा आये हैं। कोई भक्तिवश, कोई कौतुकवश देखने के लिए, बहुत जनता इकट्ठी हो गयी, पर सुलसा नहीं गयी। अम्बड दूसरे दिन दक्षिण दिशा में गरुड़ के आसन पर पीताम्बर साक्षात् विष्णु के रूप में पुर के बाहर बैठ गया। फिर भी सुलसा वहां नहीं पहुंची। तीसरे दिन पश्चिम दिशा में वृषभ के वाहन पर महेश के रूप में बैठ गया। बहुत जनता दर्शन के लिए आयी पर धर्म में रत सुलसा मन से भी इच्छा नहीं की। अम्बड सोचने लगा, सब आ गये पर सुलसा नहीं आयी। चौथे दिन उत्तरदिशा में साक्षात् जिन महावीर के रूप में समवसरण में बैठा। वंदन करने के लिए बहुत लोग आये पर आज भी सुलसा नहीं गयी। अम्बड महावीर के रूप में सुलसा के घर पहुंचा और बोला-सुलसा मेरे दर्शन करने क्यों नहीं आयी? तुम भगवान् महावीर नहीं हो। इस समय में पच्चीसवें तीर्थंकर हो नहीं सकते, तुम कोई कपटी पुरुष हो। लोगों को ठगना चाहते हो। तब अम्बड बोला-सुभगे! बस, बस, जो तुम कहती हो वह सच है। अपना निज रूप प्रकट कर बोला-भगवान् स्वयं अपने मुंह से तेरी प्रशंसा कर रहे थे। महासती! तुम एक दुढ़धर्मिणी श्राविका हो। सुलसा धर्म का भाई जानकर स्वागत किया। भगवान् का सुख संवाद पूछा।

श्रद्धानिष्ठ सुलसा तीर्थंकर नाम गोत्र का बंधन उपार्जित किया। इसी भरत-क्षेत्र में आगामी चउबीसी में निर्मम नामक 15वां तीर्थंकर होगी। इसी प्रकार सुलसा की भांति निश्चित चित्त में निज व्रतों की सुरक्षा करता है, सम्यक्त्व में दृढ़ होता है, वही व्यक्ति तीर्थंकर गोत्र का बंधन करता है।

113. कोहो चंडालो

एगो विउसमाहणो पइदिन्नं गच्छइ गंगासिणाणट्ठं। तं विउसं मग्गमि चंडालजुवईए फरिसं होइ कोहजुत्तो माहणो आसुरत्तो भणइ–धी–धी, मुरुक्खे! ण जाणेसि माहणो पवित्तो हवइ? तुह देह फासेण गंगाजलं वि असुद्धं होइ। अईव कुद्ध पंडिओ अग्गिव्व पज्जलेइ असब्भवयणेहिं करेइ तीस अवमाणणं। गलियवयणाणं सुणित्ता सा उट्ठित्ता पंडिअस्स हत्थं गेण्हीअ। पंडिओ करीअ बहुकोलाहलं, बहवे पुरजणा तत्थ समागया। पुच्छिअं जणेहिं–जुवइ! एवं कहं पंडिअस्स हत्थं आलिंगीओ? मुंच्च–मुंच्च पंडियस्स हत्थं। एवं कहं मुंच्चेमि। अम्हाणं दोण्णं वि एगा जाई संजाया। अहुणा णत्थि इमो माहणो, मम पिय चंडालो अत्थि। बहुबारं कोहं कुणेइ, कोहो चंडालो होइ, अओ होज्ज मए भत्तारो। एआवत्ता पसरिया णयरीए तस्स भज्जा वि तत्थ समागआ, नरनाहो वि आगओ। एरिसं चित्तं दट्ठूण पंडिओ अणुतावं कुणंतो अईव लज्जिरो जाओ। अप्पणं मुहं दंसिअं असमत्थो जाओ।

निरासो पंडिओ विचिंतेइ–केरिसं वायावरणं होही। णत्थि एआरिसी कप्पणा। विउसोमाहणो निपडिओ चंडाल–जुवई चलणेसु। खमेह मे अवराहं। मुंच्चसु हत्थं।

हे माणव! कसायं छड्डइ, सो दीहसंसारं तरइ। जो उवसमं विहेइ तस्स संसारो अप्पो हवइ। कोह–कारगस्स मणुसस्स हवइ माहणव्व ठिई, कोवस्स फलं निच्छिवमेव कडुयं। अओ कोहं मा कुण।

113. क्रोध चंडाल है

एक विद्वान् ब्राह्मण प्रतिदिन गंग–स्नान के लिए जाता था। रास्ते में एक चंडाल युवती का स्पर्श हो गया। ब्राह्मण क्रोधित होकर बोला–छी छी। मूर्ख! तू नहीं जानती, ब्राह्मण पवित्र होता है। तेरे शरीर से गंगा का जल भी अशुद्ध हो जाता है। अतिशय क्रोध में पंडित अग्नि के समान जलने लगा। असभ्य वचनों से तिरस्कार करने लगा। गालियां सुनकर वह युवती उठकर पंडित का हाथ पकड़ लिया। पंडित ने शोर किया। नगर की जनता इकट्ठी हो गयी। नागरिकों ने पूछा, युवती! कैसे पंडित का हाथ पकड़ लिया। छोड़–छोड़ पंडितजी का हाथ। युवती–ऐसे कैसे छोड़ सकती हूं। हम दोनों की एक ही जाति है। अभी यह ब्राह्मण नहीं है। यह तो मेरा पति चंडाल है। बहुत बार क्रोध करता है, क्रोध चंडाल होता है। इसलिए यह मेरा पति हो गया। यह वार्ता सारे शहर में फैल गयी। पंडित की स्त्री भी वहां आ गयी। राजा भी आ गया। ऐसे दृश्य को देखकर पंडित मन–ही–मन अनुताप करता हुआ बहुत लज्जित हुआ। अपना मुंह दिखाने लायक भी नहीं रहा।

निराश पंडित सोचने लगा–कैसा वातावरण हो गया, ऐसी कल्पना भी नही थी। विद्वान् पंडित युवती के चरणों में गिर गया। मेरे द्वारा किये अपराध को क्षमा करो और हाथ को छोड़ दो।

मनुष्य जो कषायों को बढ़ाया करता है, वह दीर्घ संसार करता है। जो क्रोध उपशम करता है उसका संसार अल्प रह जाता है। क्रोध करने वाले की स्थिति उस ब्राह्मण की तरह होती है। क्रोध का फल निश्चित ही कडुआ होता है। अत: क्रोध नहीं करना चाहिए।

114. सामाइयस्स महत्तं

एगो सेट्ठिवरो पइदिणं देइ लक्खसुवण्णमुद्दाए दाणं। तस्स गिहसमीवे एगा बुड्ढी थेरी णिवसइ, सा पइदिणं पच्चूसे करेइ सामाइयं। एगया भणिअं सेट्ठिणा अत्थि अज्ज मम गिहे बहु कज्जं, अओ देज्ज तुमं सहजोगं। वुड्ढी भणेइ–सेट्ठिवर! सामाइयम्मि अंतरायं पडेइ। तेण सगव्वसरेण साहिअं–थेरी! तुमं किं झूरसि? एत्थ किं पुण्णं इयंतं करेइ अणुतावं। मुहबंधणेण कि धम्म होहिअ? इणम्मि किं दव्वं लग्गइ? मुरुक्खोसि तुमं एरिसं मुहबंधणेण धम्मं सिया–ता सव्वेवि कुणेज्जा। सामाइयकरणे ण लग्गइ सुवण्णं रुवगं य। लक्खमुहरस्स दाणकरणं दुक्करं दुक्करं महादुक्करंत्ति। एवं सुणित्ता बोल्लइ सा–तुमं ण मुणेसि सामाइयस्स महाफलं। सामाइयस्स महिमा अतुलिया अकहणिज्जा य। भगवयामहावीरेण अबिअं–जइणायारस्स सरं सामाइयं। तवसाए जित्तिल्लं कम्मं ण विणट्ठइ तेत्तिल्लं कम्मं सामायिएणेगेण विणस्सइ। महत्तपुण्णं सामाइयस्स लाहं।

समयंतरेण अट्टज्झाणेण दुसिओ सेट्ठी कालं किच्चा, समुप्पण्णो वण्णम्मि हत्थी रूवम्मि। सा साविगा वि णमुक्कारं समरमाणी मरिऊण तस्स च्चिय णयरम्मि नीवस्स गिहे रायकन्नारुवम्मि जम्मं लहीअ। सो गयो वि आगओ रायहरम्मि। एगया सो हत्थी रायपहम्मि गच्छंतो णियं हरं परिवारं य पासेइ। एवं पासमाणो इहापोहं कुणंतो जाईसरणं उप्पज्जिओ। तक्कालं णिपडिओ धरणीए उवरिं। गइंदस्स एरिसावत्थं विलोइत्ता समागया अणेग पुरजणा। रायकन्नगा ति तहेव समगया कन्नगं वि जाइसमरणं पत्तं। जाइसमरणेण नच्चा पुव्वभवं। रायबाला उच्चसरेण वएइ भो गइंद! उट्ठसु, मा कुणसु अणुतावं, हं सामाइयपहावेण रायकण्णा रूवम्मि जम्मं लहीअ। तुमं अविवेग पुण्णदाणत्तो हत्थी भवं पावीअ। अओ जाणिओ गयवरो दव्वदाणओ सामाइयम्मि अहिगं फलं। सो गयवरो पच्छातावं कुणंतो उट्ठिओ।

अच्छेरं महंतं अच्छेरं कहिउं पउत्ता सव्वे। णरवइ पुच्छइ णियकण्णाए–पुत्ति! किं एयं जायं? तीए दुण्हं पुव्वभवस्स सव्वं वुत्तं कहिअं।

114. सामयिक का महत्त्व

एक सेठ प्रतिदिन एक लाख सुवर्ण मुद्रा का दान करता था। उसकी पड़ोसिन प्रभात काल में एक सामायिक करती थी। एक दिन सेठ ने उस वृद्धा से कहा–आज मेरे घर पर बहुत काम है तुम जरा सहयोग करना। सेठ! हमारे सामायिक में अन्तराय पड़ेगा। सेठ सगर्व बोला–बुड्ढी! तुम क्यों खिन्न हो रही हो, ऐसा क्या पुण्य का काम है, जो अनुताप कर रही है। केवल मुंह को बांधने से धर्म होता है? इसमें क्या द्रव्य लगता है? तुम मूर्ख हो। मुंह बांधने से धर्म होता तो सब लोग धर्म कर लें। सामायिक करने में धन खर्च करना नहीं पड़ता। लाख मुद्राओं का दान करना दुष्कर महादुष्कर है।

वृद्धा–तुम सामायिक के फल को नहीं जानते हो। सामायिक की महिमा अतुलनीय एवं अकथनीय है। भगवान् महावीर ने कहा–जैनाचार का सार है सामायिक। तपस्या से जितने कर्म नहीं टूटते उतने कर्म एक सामायिक से टूट जाते हैं। सामायिक का बहुत महत्त्व है।

कुछ समय के बाद सेठ आर्त्त-ध्यान के कारण वन में हाथी के रूप में उत्पन्न हुआ। वह वृद्धा भी महामंत्र का स्मरण करती हुई मरकर उसीनगर के राजा के घर राजकन्या हो गयी। वह हाथी भी राजदरबार में आया। एक दिन हाथी राजदरबार में जा रहा था तो रास्ते में अपने घर और परिवार को देखा। देखकर ऊहापोह होते ही जाति स्मृति ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसी समय वह धरती पर गिर गया। हाथी की इस अवस्था को देखकर, नगर के लोग इकट्ठे हो गये। वह कन्या भी आ गयी। उसे भी जाति स्मृति ज्ञान हो गया। ज्ञान से पूर्वभव को देखकर राजकन्या ऊंचे स्वर से बोली–हे गज! उठ, अनुताप मत कर, स्मरण कर तू सेठ था, मैं पड़ोसन। मैं सामायिक के प्रभाव से राजकन्या हो गयी हूं और तुम अविवेकपूर्वक दान देने से हाथी के भव में उत्पन्न हुए हो। हाथी यह जान गया कि द्रव्यदान से सामायिक का फल अधिक है। वह हाथी पश्चाताप करता हुआ उठा।

सब लोग कहने लगे कि आश्चर्य है, महान् आश्चर्य है। राजा अपनी पुत्री से पूछने लगा–यह सब क्या हुआ। कन्या ने सार पिछले जन्म का वर्णन किया। कन्या के वचन से राजा प्रतिबुद्ध हुआ और सामायिक के प्रति श्रद्धा हो गयी।

रायकण्णावयणेण पडिबुद्धा सामाइयं पडि उप्पण्णा सड्ढा। सो गओ उहअकालं सामाइयं करेइ। अट्ठभत्त-छट्ठभत्त-एगासणाणं जह सत्तीए पच्चक्खाणेण अप्पाणं भावंतो रायकण्णं गुरुरूपेण मण्णंतो सुहेण कालं गमेइ। मरिऊण सो देवलोगे देवो जाओ। रायकण्णा वि देसविरइधम्मं आराहिऊण सग्गे उप्पण्णा।

वह हाथी दोनों समय सामायिक करने लगा। अट्ठमभक्त छट्ठभक्त एकासन आदि यथाशक्ति पच्चक्खाण करके अपनी आत्मा को भावित करता रहा। राजकन्या को गुरु रूप में मानकर सुखपूर्वक मृत्यु को प्राप्त किया। मरकर देवलोक में देव बना। राजकन्या भी देशविरति धर्म की आराधना करके स्वर्ग में गयी।

115. वेयावच्चं

नंदिसेणो पव्वज्जिऊण वेरग्गभावेण सीगारइ एगं पइण्णं। बेलं बेलं पारणं करेंतो वेआवेच्चं करिस्सं त्ति। एगया देवाणं सहाए सक्को नंदिसेणमुणिं पसंसीअजं केणाविपयारेण कोवि ण समत्थो तं वियलियकरणे। एवं णिसामिऊण उट्ठिआ बे देवा, भणंति गच्छामो वयं परिक्खा हेऊ मणुस्सलोएम्मि। दोण्हि देवा मुणिरुवम्मि ठिआ उज्जाणम्मि। इओ णंदिसेणमुणी छट्ठभत्तेण तबसा अप्पाणं भावंतो पारणा-करणस्स ठिओ। एणंतरे आगमिओ एगो मुणी धमधमंतो रोसेण फरुस-वयणेहिं ताडिओ—णंदिसेण वेयावच्चिओ कहिज्जइ, विडम्बणमेत्तं तुह पइण्णा। समरेह अप्पणं अहिग्गहं। तक्कालं उट्ठिऊण मुणी णिवडिओ मुणीचलणेसु मुहुं-मुहुं कहेइ य—अहं ण जाणेमि कत्थ विहरेज्ज मुणीवरा। गिलाण मुणी कहिं ठिओ। दोण्हं आगमिआ रुग्गमुणी-समीवे। रुग्गो मुणी अइसारेण वाहिओ।

सो तुरियं-तुरियं वंदित्ता पणमित्ता पुच्छइ—हे मुणे! देज्ज अणुण्णं अहं किं करेज्ज? निट्ठुरसद्देहिं वाहेइ—इयंतो कालो गयो ण मुणेसि, वाहाए उप्पिडिओ हं। सेवव्वयं गहणेण सेवाभाई ण होइ परं वेयावच्चकरणेण वेयावच्चियो कहिज्जइ। लोलुवो तुमं भक्खणट्ठं ठिओ। विणयभावेण पत्थणं करइ-गुरुवरा! मे तुडिं खमेह। सिग्घं उट्ठित्ता जलं-मलं य धोवेइ। हे मुणे! गच्छसु मए सद्धिं णयरम्मि तत्थेव ओसहोवयारं करेस्सामि। अहं चलणे असमत्थो। गुरुवरा! भे जत्ता सुहेण हुविस्सइ कया वि पयारेण ण होस्सइ दुहं। तं कंधोवरिं उट्ठाविओ, मग्गम्मि सो मुणीउवरिं उच्चार-पासवणं करिउं लग्गो, दुब्भिगंधेण णंदिसेणस्स चलमाण पाआ इओ-तओ होइ। सो आसुरत्तो जाओ, रे दुट्ठ! मारेसि मं त्ति। णंदीसेणो भणइ—मए अविहीए चलणेण हवइ तुब्भं बहु कट्ठं। तुह तणुम्मि उप्पण्णेइ अईव वेयणा। पहु! खमसु मे अवराहं। गमणम्मि मए हवइ पमायं तं खंमेह। सो मुणी मेरुव्व अकंपिओ जाओ किंच वि ण होइ विचलियो। अकंपियं णंदीसेणं पासित्ता दोण्हि मुणी णियरुवं विसज्जिऊण मुणिकंधाओ उत्तरिऊण मुणीचलणेसु पडिआ। कया तस्स गुण-कित्तणं पसंसा य। सक्कस्स वयणस्स करीअ अवहेलणं आसयणं य। संदेहसीला दोण्हि वि मणुस्सलोए आगमिआ तुब्भ परिक्खा करणस्स। णिच्छियमेव अम्हेहिं कयं दुट्ठकज्जं। खमसु अवराहं।

115. वैयावृत्य

नंदीसेण साधु बनकर दृढ़ प्रतिज्ञा स्वीकार की कि बेला-बेलापारणा करता हुआ वैयावृत्य करूंगा। एक बार देवताओं की सभा में इन्द्र ने नंदीसेण मुनि की प्रशंसा की और कहा—उस मुनि को कोई भी विचलित नहीं कर सकता। वहां पर उपस्थित दो देवों ने कहा, हम दोनों जाते हैं उसकी परीक्षा के लिए मनुष्य लोक में। दोनों मुनि के रूप में एक उद्यान में बैठ गये। इधर नंदीसेण मुनि बेले का पारणा करने के लिए बैठे ही थे। इतने में धमधमाता हुआ मुनि आया। क्रोध में तीखे वचनों से ताड़ता हुआ बोला—नंदीसेण तुमको वैयावच्चिया कहते हैं। तेरी प्रतिज्ञा विडम्बना मात्र है। याद कर अपने अभिग्रह को। नंदीसेण तत्काल उठकर मुनि के चरणों में बार-बार झुककर कहने लगा—मुझे मालूम न था आप कहां हैं। ग्लान मुनि कहां हैं? वे बीमार मुनि के पास आये। वह मुनि अतिसार से पीड़ित था। जल्दी-जल्दी वन्दना नमस्कार कर पूछने लगा—हे मुने! आज्ञा दो, मैं क्या सेवा करूं?

ग्लान मुनि निष्ठुर शब्दों से ताड़ता है—इतना समय बीत गया व्याधि से उत्पीड़ित हूं। सेवाव्रत ग्रहण करने से सेवाभावी नहीं होता। वास्तव में वैयावृत्त करने से ही वेयावच्चिया कहलाता हे। तुम लोलुप होकर खाने बैठ गये। विनय-भव से नंदीसेण प्रार्थना करता है—गुरुवर! मेरे अपराध को क्षमा करो। शीघ्र उठकर मल को धोने लगा। हे मुने! मेरे साथ शहर में चलें वहां पर औषधि उपचार करूंगा। मुनि कहता है मैं चलने में असमर्थ हूं। गुरुवर! आपकी यात्रा सुखद होगी। किसी भी प्रकार का आपको कष्ट नहीं होगा। गुरु को कंधे पर उठा लिया। मार्ग में नंदीसेण पर उच्चार-पासवण करने लगां इतनी दुर्गन्ध आती है कि नंदीसेण के पैर चलते हुए इधर-उधर गिरने लगे। गुरु कुपित हो गया—रे दुष्ट! मारेगा मुझको। नंदीसेण—मेरे अविधि से चलने से आपको बहुत कष्ट हुआ है। आपके शरीर में अतीव वेदना उत्पन्न होती है। प्रभु! मेरे अपराध को क्षमा करो। चलने मे मेरे द्वारा जो प्रमाद हुआ है उसे क्षमा करे। अप्रकंपित नंदीसेण को देखकर दोनों मुनि अपने रूप को बदल कंधे से उतरकर मुनि के चरणों में गिर पड़े। नंदीसेण के गुण कीर्ति की स्तवना करने लगा। हमने इन्द्र के वचनों की अवहेलना की असातना की। शंकाशील दोनों तुम्हारी परीक्षा के लिए आये। हमने दुष्ट कर्म किये

भो देवा!परम दुल्लहं मग्गं जिणपण्णत्तं लद्धं मए। साहणाए पमुह-उद्देसो धम्म-संघस्ससाहुणाणं सेव्वं, वेयावेच्चं य। एवं वेयावच्चं करमाणो णंदिसेणमुणी उक्किट्ठभावेण तित्थयरगोत्तं निबंधइ।

पावयणे णिरुविओ अत्थि सेव्वाए विविहरुवाइं।

1. अण्णाणीणं णाणीकरणं,
2. चरित्तहीणाणं चरित्तसंवण्णकरणं,
3. असंयमिराणं संयमे पवट्टणं ठावणं य,
4. उम्मग्गओ सम्मग्गे पेरणं,
5. अंधआरओ पआसे आणयणं, सेव्वं ति जिणवरेहिं परुविअं।

हमारे अपराध को क्षमा करना।

नंदीसेण ने कहा–दुर्लभ हे जिनेश्वर देव का धर्म मुझे प्राप्त हुआ है। मेरी साधना का परम उद्देश्य है–जिन शासन के साधु-साध्वियों की सेवा करना और वैयावच्य करना। इस प्रकार नंदीसेण मुनि उत्कृष्ट भावनाओं से वैयावच्य करता हुआ तीर्थंकर गोत्र का बंधन किया।

सेवा के विविध प्रकार हैं–

1. अज्ञानी को ज्ञानी बनाना।
2. चरित्रहीन को चरित्र सम्पन्न बनाना।
3. असंयमी को संयमी बनाना।
4. उन्मार्ग से सन्मार्ग की ओर लाना।
5. अंधकार से प्रकाश की ओर लाना सेवा है।

116. जे कम्मसूरा ते धम्मसूरा

अज्जुणमालागारो णिय भज्जाबंधुमईए सद्धिं पइदिणं गच्छइ जक्ख मंदिरम्मि। एगया छहिं पुरिसा भममाणा आगमिआ तहेव ते पुरिसा भणंति इमा इत्थी लावण्ण-कंति पडिपुन्ना। अज्जुणं पडिमाए सद्धिं पडिवद्धीअ। अज्जुणस्स सम्मुहे करेन्ति छ जणा भोगविलासं। इत्थी उच्चसरेण सद्दं करेइ। आसुरत्तो मालागारो भणेइ—भो जक्ख! अज्ज पज्जंत तुह पूएमि, अच्चेमि। हुवीअ तस्स परिणामो बहु अभद्दो। ण लज्जसि जं तुह अग्गं करेन्ति एवं असिट्ठो ववहारो। सेव्वं पाखंड मेत्तं णत्थि किमवि अट्ठं। तक्कालं अणुकंपंतो जक्खो मालागारस्स सरीरम्मि पविट्ठो। बंधं भिंदिउण मोग्गरेण हणेइ ताणं पुरिसाण। अज्जुणमालागारेण कया पइण्णा हणेमि अहं पडिदिणं छहिं पुरिसं तह सत्तमा महिलाओ।

एवं पाडिदिणं सतपाणिणं हणमाणो भमइ। सव्वं वइयरं पत्थरिअ रायगिहे णयरे। णयरजणाणं गमणागमणं समत्तं। समोइण्णो समण भगवो महावीरो। पसरिआ सूयणा। सुदंसणसेट्ठो विचिंतेइ—जं होउ तं होउ। भयवं वंदणट्ठं परिगयो नयरत्तो वहिं। अकम्हं सुदंसणं दट्ठूण अज्जुणो अणुधाविओ। सुदंसणो झाणं ज्झायइ। तल्लिणो सुदंसणो अरिहंत-सिद्ध-साहूणं सरणं गेण्हइ। तेण कया पइण्णा जाव पज्जत्तं भयवमहावीरस्स ण होहिस्सं दंसणं ताव पेरेंतं ण गेण्हिस्सं आहारं। सागारमणसणं ठिओ। ठाविओ काउस्सग्गे। तस्स पहावेण अज्जुणमालागारस्स सरीराओ निस्सरिओ जक्खो, णिवडिओ अज्जुणो, किंचिकालं पच्छा उट्ठिओ अज्जुणो। एवं कहं होहिअ? सुदंसणो भणेइ-सव्वं वइयरं। अज्जुणो पुच्छइ सुदंसण! तुमं कहं गमसि? भयवं सरणं गच्छामि। भण-भण अहं कुत्थ गच्छिज्जं? एहि-एहि मए सद्धिं। दोण्णं वि समागया भयवं सरणम्मि। भयवया महावीरेण निसुणित्ता धम्मदेसणा अज्जुणो उट्ठिऊण वंदेइ। पुच्छइ—भंते! कहं होस्सइ मह कल्लाणं? अज्जुण! गाढकम्मं छेत्तुं तवं करेह। पवयणं सुणित्ता तं वेरग्गं संजायं। गहिआ दिक्खा य। छट्ठ भत्ततवं-गहिऊण विहरइ। जया भिक्खायरियस्स गयो णयरम्मि तओ जणं तं अक्कोसंति, खिसंति पच्चुल्लं समया धम्मं

116. जो कर्म में सूर हैं, वे धर्म से सूर हैं

अर्जुन मालाकार अपनी पत्नी बंधुमती के साथ प्रतिदिन यक्ष के मंदिर में जाता था। एक बार छः पुरुष घूमने आये। उन पुरुषों ने बंधुमती को देख सोचा कि यह स्त्री सुन्दर व लावण्यवती है। उन्होंने अर्जुन को यक्ष की मूर्ति से बांध दिया। छः ही पुरुष अर्जुन के सामने ही बंधुमती के साथ दुराचार सेवन करने लगे। बंधुमती जोर से रोने लगी। क्रुद्ध अर्जुन माली कहने लगा—हे यक्ष! आज तक तेरी पूजा की, स्तुति की, उसका परिणाम बहुत बुरा-बुरा आया है। क्या तुझे शर्म नहीं आती कि तुम्हारे सामने ही ऐसा अशिष्ट व्यवहार हो रहा है। सेवा करना पाखंड है, कोई अर्थ नहीं निकला। तत्काल प्रकंपमान यक्ष उसके शरीर में प्रवेश कर गया। वह बंधन तोड़कर मुंगड़ा से बंधुमती सहित सबको मार दिया। अर्जुन माली ने प्रतिज्ञा की कि प्रतिदिन 6 पुरुषों एवं सातवीं महिला को मारना है।

इस प्रकार सात प्राणियों को प्रतिदिन मारता वह घूमने लगा। यह समाचार सम्पूर्णनगर में फैल गया। लोगों का आवागमन मिट गया। उसी स्थान पर भगवान् महावीर पधारे। समाचार लोगों को मिला। सुदर्शन सेठ ने सोचा—जो होगा सो होगा। भगवान् की वंदना के लिए वह नगर से बाहर गया। सुदर्शन को देख अर्जुन दौड़ पड़ा। सुदर्शन ध्यानलीन हो गया। ध्यानलीन सुदर्शन अर्हन्त, सिद्ध और साधुओं की शरण ग्रहण कर लिया। उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक भगवान् महावीर के दर्शन नहीं होंगे तब तक भोजन नहीं ग्रहण करूंगा। सागार अनशन ग्रहण कर, कायोत्सर्ग में स्थित हो गया। उसके प्रभाव से अर्जुन के शरीर से यक्ष निकल गया। वह वहीं गिर गया। कुछ समय बाद अर्जुन उठा और विचार किया—यह कैसे हो गया। सुदर्शन ने सम्पूर्ण प्रसंग को बताया। अर्जुन ने पूछा—सुदर्शन! तुम कहां जा रहे हो? भगवान् महावीर की शरण में। बताओ! बताओ! मैं कहां जाऊं? आओ-आओ मेरे साथ, दोनों भगवान् की शरण में गये। भगवान् महावीर की धर्म देशना सुनकर अर्जुन उठा और वंदना की। भगवान् से पूछा—मेरा कल्याण कैसे होगा? अर्जुन! निविड कर्म को छेदने के लिए तप करो। भगवान् महावीर की वाणी सुनकर उसको वैराग्य उत्पन्न हुआ और दीक्षा ग्रहण की। षष्ट भक्त तप धारण कर भ्रमण करने लगा। जब भिक्षा के लिए

मुदाहरे मुणी इत्थं सुत्तं धारित्ता तितिक्खा भावेण परिसहं सहमाणो एवं विआरइ-हणण-मारणेहि मम कम्मगंत्थिं भेअणट्ठं णयरजणा करेन्ति सहजोगं। अओ ण कायव्वं कोहं। ण कायव्व माणं। तस्स अब्भन्तरी चेयणा जागरिया।

जाता तो लोग उसे मारते, पीटते। 'मुनि को समता धर्म का आचरण करना चाहिए' इस सूत्र को धारण कर विविध परिषहों को सहन करते हुए विचार करने लगा—हनन-मारन से नागरिक जन मेरी कर्म ग्रन्थियों को काटने में सहयोग कर रहे हैं। इसलिए क्रोध नहीं करना चाहिए, मान नहीं करना चाहिए। उसकी भीतरी चेतना जागृत हो गयी।

117. अप्पा दन्तो सुही होइ

एक्कासिअं समोइण्णा भयवो महावीरो णयरम्मि। एवं सुह-संवायं सुणित्ता महारायो पफ्फुल्लिओ जाओ। रयणीय महारायो दसणभद्दो विचिंतेइ-कयं अणेगहुत्तं-महावीरस्स दंसणं परं इयाणि एआरिसं दरिसणं करणिज्जं जारिसं पुव्वं ण हुवीअ पच्चूसे-चउरंगिणी सेणाए सुसज्जिओ, मंति-सामंत-सेट्ठ-सत्थवाह पउरजणेहिं सद्धिं, विविह णच्चगाणेहिं समं य समागमिओ भयव-महावीरस्स समोसरणम्मि। सुहज्झाणेण वड्ढमाण-भावेण वंदित्ता-नमंसित्ता भयवं चलणेसु ठिओ।

इओ सक्को सग्गम्मि चिंतइ-अच्छेरं बहुअच्छेरं भगवंताणं वंदणट्ठं इयंतं गव्वं। धी! धी! तक्कालं इंदो विउव्विओ। एरावण हत्थिं, तस्स पंच सयं मुंहेहिं। एक्केकं मुंहम्मि अट्ठदंतेहिं दंते-दंते अट्ठ पोक्खरणीहिं पोक्खरणीएपोक्खरणीए अट्ठ पउमेहिं, पउमे अट्ठपत्ते, पत्ते-पत्ते बत्तीस रास पेक्खणेहिं सुसज्जिओ सो। तं दट्ठूण चिंतियं दसण्णभद्देणं-अहो! अस्स पुरओ तुच्छोऽहं। सिरीए गव्वो कओ। किमेत्थ पिसाएणं? इच्चाइसंवेग-भावणाए पडिबुद्धो उवओवसममुवगओ चारित्त-मोहणीयस्स भगवआ दिक्खा गहिओ य। सक्को जंपइ धन्नो कयत्थो तुमं एरिसं रिद्धिं सहसच्चिय परिचत्ता मुणि धम्मं गेण्हिअ। एवं वंदणं करित्ता इन्दो गओ सग्गं।

117. आत्मा का दमन श्रेष्ठ है

एक बार एक नगर में भगवान् महावीर पधारे। यह शुभ संवाद सुनकर राजा बहुत प्रफुल्लित हुआ। राजा ने चिन्तन किया—मैंने भगवान् महावीर के अनेक बार दर्शन किये। अबकी बार इस प्रकार दर्शन करूं, जैसे आज तक किसी ने नहीं किये। प्रातःकाल स्नान कर अलंकारों से सज्जित होकर सेना से सज्जित होकर मंत्री सामंत, श्रेष्ठी, सार्थवाह ओर नागरिक जनों एवं विविध नृत्यगान के साथ भगवान् महावीर के समवसरण में आया। शुभध्यान एवं वर्धमान भाव से युक्त होकर भगवान् की वंदना और नमस्कार कर उनके चरण में बैठ गया।

इधर इन्द्र स्वर्ग में सोचने लगा—आश्चर्य, महान् आश्चर्य! भगवान् की वंदना में इतना गर्व! धिक्कार है। तत्काल इन्द्र ने विक्रिया को धारण कर समवसरण में आया। इन्द्र का एरावत हाथी—पांच सौ मुंह, एकेक के मुंह में आठ दांत, एकेक दांत पर आठ पोखरणी, हर पोखरणी में आठ-आठ पद्म। पद्म पर आठ-आठपत्ते, पत्ते-पत्ते पर बत्तीस रास पोखरणी आदि से ऐरावत को सज्जित किया गया। उसे देखकर दसार्णभद्र ने चिन्तन किया अहो! इसके सामने मेरी संपत्ति तुच्छ है। लक्ष्मी का गर्व किया। इस पिशाच से क्या? आदि संवेगों से प्रतिबुद्ध हुआ। चारित्र मोहनीय का क्षायोयशम हुआ, भगवान् से दीक्षा ग्रहण कर ली। शक्र ने कहा—आप धन्य हैं, कृत्पुण्य हैं। ऐसी संपत्ति को त्यागकर साधु बन गये। इन्द्र वंदना करके स्वर्गलोक में गया।

118. कायगुत्तीए-मुत्ती

एगो सिरिमंतेण पालियो सुगो। सो पच्चूसकाले राम-विण्हु-अल्लारं मुहु-मुहु बोल्लइ। तस्स महुरी भासाए सेट्ठिणो चित्तं आलहइयं सुगेण सद्धिं गाढयारो पेम्मं संजाओ। अणुरंजिओ सेट्ठिवरो तं सम्मं परिपालइ। सो सेट्ठिवरो पइदिणं गमइ मुणिवराणं पावयणसमोसरणंम्मि। एवं कियंतो कालो अइक्कंतो। एगया सुगो वएइ–हे सेट्ठिवर। मुणिवराणं मे एगं पण्हं पुच्छेज्ज बंधाआणाओ मुत्ती कहं होहिस्सइ? सिरिमंतो धम्मोवएसं सुणित्ता साहुणं समीवे चिट्ठिऊण सविणय सभत्तीए सुगस्स पण्हं पुच्छई। णाणविसण्णो परमकुसलो मुणिवरो तक्कालं अच्छीइं निमलीऊण झाणं झायइ। सेटिठ्वरो एगहुत्तं बीयहुत्तं। पण्हं पुच्छइ परं मुणी तुण्हिको संजाओ। किमवि ण भणइ। सिरिमंतो आगओ णियहरम्मि। पुच्छइ सुगो पडुत्तरं, सेट्ठिणा वुत्तं–हे सुग! तुहपण्हं दोच्चं, तच्चं, पडिपुच्छिइअ परं मुणिवरो, अकम्पो, णिच्चलो निच्चेट्ठोय संलग्गो झाणंम्मि किमवि उत्तरं ण दाहिअ। एवं सोऊण सुगो वियारेइ पंजराओ छुड्ढणत्थं अत्थि उत्तमो उवायो काउसग्गो। सो एवमेव णयनाइं निमलीऊण अकम्पिओ णिविडिओ।

पच्चूखे इब्भो तं निच्चेट्ठं दट्ठूण चिंतेइ किमेसो मूओ? पंजरो उग्घाडेइ तं मूओ-जाणित्ता वाहिरं कड्ढिऊण पुणो-पुणो जिय हत्थेहिं फासेइ। रोयमाणो सेट्ठिवरो जम्पइ–हे पियसुग! मं छड्डीऊण कत्थ गओ? हा! हा! मे पियसुगो मच्चुं पत्तो। खेयखिन्नो सिरिमंतो मरणकिरिया करणत्थं गयो णिय उज्जाणम्मि। अंकंम्मि गहिऊण उच्चसरेण रोयेइ। सुगो उट्ठिऊण रुक्खोवरिं ठिओ अकम्हा एवं कहं जायं? मुहूत्तं पढमं मओव्व निच्चलो संजाओ। अहुना तरुवरिं जिओ। वंचिओ अहं। सुगो आह–हे सिरिमंत! मुणिणं दिण्हं उत्तरं तयप्पयारेण मए कयं। पंजरवंधणाओ छड्डणत्थं कयं एवं उवायं। सच्चमिणं मुणीणं सिक्खा सरीर सिढिलीकरणेण इंदिय निग्गहं करणेणं एवं होज्जा भवबंधण मुत्ती। काउसग्गकरणेण होहीअ दोण्हि लाहं दव्वं भावं य। कायगुत्तीए साहणाए हवइ भेयविण्णाणं।

118. कायगुप्ति से मुक्ति

सेठ ने एक तोते को पाला। वह तोता प्रात:काल में राम-विष्णु, अल्ला बार-बार बोलता था। उसकी मधुरी भाषा ने सेठ के चित्त को आकर्षित कर लिया। तोते के साथ गहरा संबंध हो गया। अनुरंजित श्रेष्ठीवर उसकी सम्यक् अनुपलना करता। वह सेठ प्रतिदिन संतों के प्रवचन सुनने जाता था। इस प्रकार काफी समय बीत गया। एक बार तोते ने कहा–श्रेष्ठिवर! मुणिवरों को मेरा एक प्रश्न पूछना। बंधन से मुक्ति कैसे होगी? श्रीमंत धर्मवार्तासुनकर साधु के समीप विनयपूर्वक खड़े होकर सभक्ति पूछा। विशिष्टज्ञानी परमकुशल मुनीवर ने तत्काल आंखे बंछकर ध्यान किया। सेठ ने एक बार, दो बार प्रश्न पूछे। मुनि मौन हो गए। कुछ भी नहीं बोले। सेठ अपने घर आ गया। तोते ने अपने प्रश्न का उत्तर पूछा। सेठ ने कहा–हे तोते! तेरे प्रश्न को एक बार, दो बार पूछा,पर मुनिवर अप्रकंपित, निश्छल ध्यान में बैठ गये। कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इस प्रकार सुनकर तोता विचार करने लगा। पिंजरे से छूटने का उपाय है–'कायोत्सर्ग'। वह तोता भी आंखों को बंद कर नीचे लेट गया।

प्रात:काल में सेठ ने निश्चेष्ट तोते को देखकर चिंतन करने लगा–क्या यह मर गया? पिंजरे को खोला। तोते को मृतक जानकर पिंजरे से बाहर निकला और बार-बार उसके शरीर पर हाथ फेरने लगा। रोते हुए सेठ ने कहा–हे तोते! मुझको छोड़कर तू कहां चला गया। आ, हा, मेरे प्रिय तोता मर गया। खेद खिन्न, सेठ ने उसकी क्रिया करने के लिए उद्यान में ले गया। गोद में लेकर ऊंचे स्वर से रोने लगा। तोता उड़कर वृक्ष पर बैठ गया। अकस्मात् इस प्रकार देखकर सेठ ने कहा–यह क्या हो गया। तोते ने मुझको ठग लिया। तोते ने कहा–हे सेठ! जिस प्रकार मुनि ने उत्तर दिया, उसी प्रकार मैंने किया है। पिंजरे के बंधन से छूटने के लिए ऐसा उपाय किया। सच है–मुनि की शिक्षा। शरीर को शिथिल करने से, इन्द्रियों का निग्रह करने से ही भव-बंधन टूटते हैं। कायोत्सर्ग करने से दो लाभ होते हैं–द्रव्य और भाव। कायगुप्ति से भेद विज्ञान होता है।

119. सोयारा-तिण्हि-पयारा

एगो कलाकुसलो सिप्पीगारो घडिया तिण्हि पडिमा। उवट्ठिओ महारायभोयणरेंदो सहामज्झे। तं दंसणत्थं समागआ बहवे लोगा। सिप्पकला अईव पसंसणिज्जाति। सव्वेवि बोल्लंति णूणं एसच्चिय सिप्पकला कहिज्जइ। अहो केरिसि सुंदेरापडिमा। एआरिसी सुंदरयमा पुत्तलिगा णिम्माणं करणं अन्नपुरिसो असमत्थो। भायर! किमियंविक्केणिज्जा? पुच्छं महारायेण। तेण अवीअं णत्थि णत्थि। णरणाह! तुह सहामज्झे अत्थि कोवि एआरिसो पुरिसो जं एयाए उइयं मुल्लं करेइ? जइ करेइ उइयं मुल्लं तं दास्सामि हं एगलक्ख-मुहरा। अन्नह अहं लेस्सामि वुब्भओ। सव्वेहि करावओ निरिक्खणं पर ण जाणियो रहस्सं। इयंतम्मि आगओ कालिदासो विउसो, रायाणं कहेइ–कहसु भेयाभेयं। सो पडिमा गहिऊण उवरिं–अहे सुहुम दिट्ठीए पेछइ, एगा सारिसि एगं रुवं एगं वण्णं च लग्गइ। वह पज्जपजतकरणेण करेइ परिक्खा। एगं पुत्तिलगं कण्णसु छिद्देसु तिणाए सलागा पक्खिवेइ। सा सलागा वीअकण्ण छिद्दाओ निग्गया। अओ पढमा पडिमाए मुल्लं मेत्तं एगा कवड्डिया। वीआ पुत्तलिगाए कण्हे पक्खिवेइ सा सलागा मुहाओ निग्गया। इमस्स पडिमाए मुल्लं एगं रूवगं। तइअ पडिमाए सलागा कण्णेसु पक्खिवेइ। सा सलागा अंतरं निवडेइ। अओ इमस्स मुल्लं अत्थि एगलक्खरूवगं। एवं सुणिऊण सव्वेवि अच्छरिया जाया। नरनाहेण पुट्ठं–कहं जाणिओ समं विसमं? सुहूमदिट्ठीए पलोइज्जा तेणकारेण पाविओ रहस्सं।

एवं सोयारा तिविहा पयारा। पढमो सोयारो मुणिणं पावयाणं सोऊण अवरकण्णाओ निस्सारेइ। सो पढमपुत्तलिगा सारिसी। केइ सोयारो बीअ-पडिया सारिच्छा धम्म उवएसं सुणित्ता मुहेण करेइ पसंसा परं ऊघाणं न करेइ परिवट्टणा। केइ सोयारो इवह तइआपुत्तलिगा समाथा अज्झत्थ जागरणाए करेइ चेयणं अणावुत्तं।

119. श्रोता के तीन प्रकार

एक कलाकुशल शिल्पकार ने तीन मूर्तियों का निर्माण किया। उन मूर्तियों को लेकर राजा भोज की सभा में उपस्थित हुआ। मूर्तियों को देखने के लिए अनेक लोग आए। और शिल्पकला की प्रशंसा करने लगे। वास्तव में इसका नाम है 'कला'। कितनी सुन्दर मूर्तियां हैं? ऐसी मूर्तियों का निर्माण करने में अन्य लोग असमर्थ हैं। राजा भोज ने पूछा–क्या यह मूर्तियां बिक्री के लिए हैं? उसने कहा–नहीं, नहीं। हे राजा! आपकी सभा में कोई है ऐसा पुरुष? जो इनका उचित मूल्य कर सके। उचित मूल्य करने वालों को एक लाख रुपये दूंगा। अन्यथा मैं ले लूंगा।राजा ने सबसे निरीक्षण करवाया,पर रहस्य को कोई भी समझ नहीं पाया। इतने में कालिदास उपस्थित हुआ। राजा ने कहा–इन मूर्तियों को समझने में क्या रहस्य है? कालिदास ने तत्काल मूर्तियों को ऊपर से नीचे तक सूक्ष्म दृष्टि से देखा। तीनों मूर्तियां एक समान थीं। बहुत प्रयत्न के साथ मूर्तियों की परीक्षा की। एक मूर्ति के कान में तिनका डाला। वह तिनका दूसरे कान से निकल गया। कालिदास ने कहा–इस मूर्ति का मूल्य मात्र एक कोड़ी है। फिर दूसरी मूर्ति के कान में तिनका डाला, वह मुंह से निकल गया। इसका मूल्य मात्र एक रुपया। इसी प्रकार तीसरी मूर्ति के कान में डाला। वह अन्दर चला गया। इसका मूल्य एक लाख रुपया। इस प्रकार कालिदास द्वारा उत्तर सुनकर आश्चर्यचकित हो गये। राजा ने पूछा–कालिदास सम-विषय कैसे जाना? कालिदास ने कहा–राजा! मैंने सूक्ष्मदृष्टि से निरीक्षण कर इस रहस्य को पहचान लिया।

इस प्रकार श्रोतागण भी तीन प्रकार के होते हैं–प्रथम श्रोता मुनि का प्रवचन सुनकर दूसरे कान से निकालता है, उसकी तुलना प्रथम मूर्ति से की गई है। कई श्रोता दूसरी मूर्ति के समान हैं। धर्म-उपदेश सुनकर मुंह से प्रशंसा करते हैं पर अपना परिवर्तन नहीं करते। कई श्रोता तीसरी मूर्ति के समान हैं। अध्यात्म के द्वारा चेतना को जागृत करते रहते हैं।

120. चउरा पण्हा

एगया बुद्धिपरिक्खा हेऊ नरनाहो वुड्ढसेट्ठेण चउराइं पण्हाइं पुच्छीअ–एत्थ एआरिसी का वत्थु सिया? जो (1) अत्थ वि तत्थ वि अत्थि, (2) अत्थिणत्थि, (3) णत्थिअत्थि, (4) णत्थिअत्थि। जो इमाणं पण्हाणं पचुत्तरं देहिइ सो धीमंतो घोसिज्जइ। सव्वेवि विम्हिया जाया। विसिट्ठबुद्धिमंतो अमच्चो कहेइ अहुणाएव पण्हस्स उत्तरं देमि अहं। सिग्घं कया चउरा पुरिसा रायसहाए उवट्ठिया।रायो–इमस्स किं रहस्सं? कहेइ–नराहिव! इमो सिरिमंतो (1) अत्थि वि सुही तत्थवि सुही होइ। पुव्वभवे कया धम्माचरणं तेण कारणेण हवइ एत्थवि परम सुहीयो जायो, अहुणा वि कुणेइ साहुणं सेवं-सुसुसं-दाण-सील-तव-आदि-विविहा-धम्माराहणा। (2) अत्थिणत्थिणं। इमो धणियोपुत्तो पुव्वभवप्पहावेण एत्थं सुही भवइ परं वट्टमाणे कामभोगेसु लीणो संचियं पुण्णं विणासेइ, माणवभवं करेइ विफलं, परभवे सुहओ वंचिओ। (3) णत्थिअत्थिणं–तइओ पुरिसो महप्पो, अहुणा पाव-कम्मेहिं विरओ। जिहंदियो, परकल्लाणकारगो, सया अप्पडीबहदो विहरेइ। अहुणा उव सुहसामग्गीए वंचिओ, परं पुरओ भविस्सइ महारिद्धिवंतो,परमानन्दिओ। (4) णत्थिणत्थिणं। चउत्थो भिक्खू। जाचणं करन्तस्सवि ण भरेइ उदरं जह-तह जीवणं निव्वइह। भवंतरे णूणं पावकम्मेहिं दुग्गईए होहिअ एवं बुद्धिनिहाण आमच्चे वहु पसंसणिओ पाहुडेण महारायेहिं सक्कारियो सम्माणियो।

120. चार प्रश्न

एक बार बुद्धि परीक्षा के लिए राजा ने एक वृद्ध सेठ से पूछा–यहां पर ऐसी क्या वस्तु है–(1) जो यहां भी है और वहां भी है। (2) यहां है, वहां नहीं। (3) यहां नहीं, वहां है। (4) यहां भी नहीं और वहां भी नहीं है। जो इन प्रश्नों का उत्तर देगा वह बुद्धिशील होगा।सारी जनता विस्मित हो गयीं। बुद्धिवान मंत्री ने कहा–इसका उत्तर कल मैं दूंगा। मंत्री ने चार पुरुषों को राजा के सामने उपस्थित किया। राजा इसका क्या रहस्य है? मंत्रीवर ने कहा–हे नराधिप! यह श्रीमंत–(1) यहां भी सुखी है और वहां भी सुखी होगा। क्योंकि पूर्वजन्म में इन्होंने धर्माचरण किया। अतः सब प्रकार से सम्पन्न है। वर्तमान में भी संतों की सेवा, दान-शील-तप-भावना आदि धर्माराधना करता है तो आगे भी सुखी होगा। (2) ''यहां है वहां नहीं है'' हे राजा! यह धनिक पुत्र है। इसने पिछले जन्म में शुभ कर्म किये थे अतः यहां सुखी है। किन्तु वर्तमान में कामभोगों में आसक्त है।संचित पुण्यों का विनाश कर रहा है। मनुष्य जन्म को विफल कर रहा है। अगले जन्म में सुख से वंचित रहेगा। (3) ''यहां नहीं, वहां है''–तीसरा पुरुष यह महात्मा है–यहां सर्वसुखों से वंचित है किन्तु वर्तमान में इद्रिय विजयी है,परोपकारी है, अप्रतिबंध होकर विचरण करते हैं। अतः भविष्य में महाऋद्धिवान और आनन्दित होगा। (4) ''यहां भी नहीं और वहां भी नहीं है'' राजन् यह चौथा पुरुष भिक्षु है। याचना करने पर भी पूरा पेट नहीं भरता। जैसे-तैसे जीवन निर्वाह करता है। भवान्तर में निश्चित ही दुर्गति होगी।

121. ण मुञ्चणिज्जं मणुयसहावं

एगो महप्पो पइदिणं गच्छइ गंगानईए सिणाणट्ठं। एगासिअं नईए पेच्छइ विच्छुअं सापकम्पिअं। तं मरंतं दट्ठूण महप्पहियये जागरिया करुणा। जलम्मि पडिअं विच्छुअं निक्कासणत्थं तं हत्थम्मि उट्ठावेइ। सो विछु महप्पं डंसिइ। महप्पस्स हत्थं कम्पिओ,पुणरवि विच्छु जलम्मि निवडिओ। एवं वीयवारं, तइअवारं निक्कासिओ, तयावि सो महप्पा डंसिओ जाओ। महप्पा पुणो-पुणो निसारेइ सो पुणो-पुणो डंसेइ। असइं निक्कसित्ता, तया वि सो ण चयइ जाइसहावं। तत्थेव एगो रजओ वत्थाइं धोवेइ, सो भणइ जोगीवर! मुंच-मुंच इमं विच्छुं। तुमं करेइ परोवगारं उद्धरणत्थं पुणो-पुणो निकासेइ इमा ण छड्डइ णियसहावं। महप्पो—भायर! अत्थि विछुओ एगो चुच्छो पाणी सो मरंतं वि ण मुंचइ णियजाइसहावं तया हं मणुसो होऊण उत्तमं सहावं कहं मुंचेमि?

121. मनष्य का स्वभाव नहीं छोड़ना चाहिए

एक ब्राह्मण प्रतिदिन गंगा नदी में स्नान करने के लिए जाया करता था। एक दिन नदी में बिच्छू को प्रकंपित देखा। उसको मरते हुए देखकर महात्मा के दिल में करुणा जगी। स्वयं जल में उतरकर बिच्छू को हाथ से उठाया। वह बिच्छू महात्मा के हाथ पर डंक मार दिया। डंक के कारण महात्मा का हाथ कांपने लगा।दूसरी बार उस बिच्छू को फिर उठाया। इस प्रकार दो बार, तीन बार बिच्छू को निकाला। फिर भी बिच्छू डंसता रहा। अनेक बार निकालने पर भी बिच्छू का जाति स्वभाव नहीं मिटा। उसी किनारे पर धोबी वस्त्र धो रहा था। उसने कहा—हे योगी! छोड़-छोड़ इस बिच्छू को। बार-बार इसे बाहर निकाल परोपकार कर रहे हो। पर यह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ रहा है। महात्मा ने कहा—हे भाई! यह बिच्छू क्षुद्र प्राणी है। मरने पर भी अपने जाति स्वभाव को नहीं छोड़ता। तब मैं अपने उत्तम स्वभाव को कैसे छोडूं?